गम्भीर विषयों

पर

सरल विचार

मूल लेखक

श्री चेस्टर मैक्नाटन

अनुवादक

श्री योगेश्वर शर्मा गुलेरी

With a preface by

Col. C. W. Waddington, M. A., C. I. E., M. V. O.

Ex-Principal Mayo Chiefs College,

Ajmere.

प्रकाशक

श्री योगेश्वर शर्मा गुलेरी

जयपुर सिटी।

प्रथम बार
११००

*

मूल्य ॥)

Dedicated to my Revered Teacher

William Owens, Esq.,

M.B.E., B.A.

Director of Education, Jaipur State.

As a humble token of the profoundest respect of his most obedient, though unworthy, pupil.

—Yogeshwar Sharma Guleri.

गोविन्स महोदय, एम० बी० ई०, बी० ए०,

शिक्षा-विभाग, जयपुर स्टेट ।

PREFACE

As a former colleague of Mr. Chester Macknaghten I gladly accede to Mr. Yogeshwar Guleri's request to write a few lines by way of Preface to his translation of a portion of Mr. Macknaghten's well-known book "Common Thoughts on Serious Subjects" for use in Indian schools. Mr. Macknaghten devoted practically the whole of his working life to the training of boys of the Indian nobility and gentry, especially in respect to the formation of character, and the wisdom and experience which are embodied in his volume of essays cannot fail to be of permanent value to Indian teachers and students of all classes and creeds.

London,
December 1938.

C. W. Waddington

AN APOLOGY.

It is customary in Hindi to write a preface even to small translations like the present one, and I have two reasons for doing it. Firstly, it would be sheer impertinence if I went out of the usual way for that would amount to preaching the impropriety of apologies which should be done only by those who count in the Hindi World. Secondly, I must at least remember those kindnesses without which this book could not have been published.

Col. Waddington has condescended to write the Preface. Expressing gratitude for it on my part would be like a bankrupt's I. O. U. which he knows he will never be able to honour. A spendthrift keeps

no record of his liabilities for he knows he can never repay. Encouraging and inspiring the young has been his life work. This foreword of his is both an inspiration and an encouragement to me. I pray I may prove deserving of them.

Mr. Owens has graciously condescended to accept this humble dedication. To thank him for it would, besides being impertinent, be ungratefully forgetting the various kindnesses I have ever recieved from him. I console myself in the hope that I may in future be able to dedicate something more worthy to him.

I have learnt Hindi from Prof. Ram Krishna Ji Shukla, M. A. Whatever there is in this book is his.... except the shortcomings which are entirely mine. I am very grateful to Pt. Madhav Prasad Sharma of the Indian Press Ltd. for steering the book, as it were, through the Press.

I do not know how far the translation is successful but I do know that I have done my best. If it encourages even one student to follow the path chalked out, my labours will be amply repaid.

—Yogeshwar Sharma Guleri.

दो शब्द

इस छोटे से अनुवाद को भी बिना प्रस्तावना के न रहने देने के दो कारण हैं। पहले तो यह एक परिपाटी सी हो चली है जिसे छोड़कर नवीन मार्ग का अनुसरण अथवा निर्देश महारथियों द्वारा ही होना चाहिये। दूसरे उन सबका जिनके अनुग्रह बिना यह प्रयास विफल होता कम से कम संस्मरण मात्र तो करना ही चाहिये। अस्तु।

मैं नहीं जानता कि अनुवाद कैसा हो पाया है पर हाँ यदि इससे एक भी छात्र इसके बताये मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित हुआ तो मेरा श्रम सार्थक होगा।

कर्नल वार्डिंगटन महोदय ने इस पुस्तिका का परिचय लिखने की दया की है। इस अनुग्रह की आभार-स्वीकृति अशिष्टता के अतिरिक्त वैसी ही वंचना है जैसी कि उस दिवा-लिये की हुण्डी जिसे वह कभी सकार नहीं सकता। अपव्ययी अपने ऋणों का ब्योरा नहीं रखते क्योंकि वे यह जानते हैं कि वे कभी उऋण नहीं हो सकेंगे। कर्नल साहिब का समस्त जीवन

युवकों को सत्पथ पर प्रेरित करने में व्यतीत हुआ है। यह परिचय भी एक प्रोत्साहन और प्रेरणा ही है। ईश्वर करे कि मैं इस प्रोत्साहन के योग्य हो सकूँ।

गुरुवर ओवन्स महोदय ने न जाने क्या सोच कर इस तुच्छ समर्पण को अङ्गीकार कर लिया है। इसके लिये धन्यवाद देने का अर्थ केवल उन सब कृपाओं का अकृतज्ञता पूर्वक विस्मरण कर देना होगा जोकि उन्होंने समय समय पर मुझ पर की हैं। कदाचित् भविष्य में मैं उन्हें कोई उनके समर्पण के योग्य पुस्तक भेंट कर सकूँ, इसी आशा से संतोष लेरहा हूँ।

हिन्दी जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचक प्रोफेसर श्रीरामकृष्ण जी शुक्ल एम० ए० के श्रीचरणों में मैंने हिन्दी सीखी है। इस पुस्तिका में जो कुछ है उन्हीं श्रीचरणों का है—केवल त्रुटियों का दायित्व मुझ पर है क्योंकि वे मेरी हैं—और क्या कहूँ ?

इण्डियन प्रेस लिमिटेड के सहृदय श्रीमाधवप्रसाद जी शर्मा ने न सम्हाला होता तो यह पुस्तक छपती भी इसमें सन्देह है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

—योगेश्वरशर्मा गुलेरी

लेख-सूची

गम्भीर विषयों पर सरल विचार

१—ईश्वर की समुपस्थिति।

हम प्रतिदिन उन चीजों को देखते और उनके विषय में बातचीत करते हैं जो हमारे चारों तरफ मौजूद हैं—दिखाई देने वाले इस सुन्दर संसार के पदार्थों को और उन तमाम बातों को जो इस संसार की हैं—और हमारी बातचीत का ढङ्ग ऐसा होता है मानों संसार की यही सब वस्तुएँ सब कुछ हैं, जिनका कि हमारे

AN APOLOGY.

It is customary in Hindi to write a preface even to small translations like the present one, and I have two reasons for doing it. Firstly, it would be sheer impertinence if I went out of the usual way for that would amount to preaching the impropriety of apologies which should be done only by those who count in the Hindi World. Secondly, I must at least remember those kindnesses without which this book could not have been published.

Col. Waddington has condescended to write the Preface. Expressing gratitude for it on my part would be like a bankrupt's I. O. U. which he knows he will never be able to honour. A spendthrift keeps

no record of his liabilities for he knows he can never repay. Encouraging and inspiring the young has been his life work. This foreword of his is both an inspiration and an encouragement to me. I pray I may prove deserving of them.

Mr. Owens has graciously condescended to accept this humble dedication. To thank him for it would, besides being impertinent, be ungratefully forgetting the various kindnesses I have ever recieved from him. I console mvself in the hope that I may in future be able to dedicate something more worthy to him.

I have learnt Hindi from Prof. Ram Krishna Ji Shukla, M. A. Whatever there is in this book is his .. except the shortcomings which are entirely mine. I am very grateful to Pt. Madhav Prasad Sharma of the Indian Press Ltd. for steering the book, as it were, through the Press.

I do not know how far the translation is successful but I do know that I have done my best. If it encourages even one student to follow the path chalked out, my labours will be amply repaid.

—Yogeshwar Sharma Guleri.

दो शब्द

इस छोटे से अनुवाद को भी बिना प्रस्तावना के न रहने देने के दो कारण हैं। पहले तो यह एक परिपाटी भी हो चली है जिसे छोड़कर नवीन मार्ग का अनुसरण अथवा निर्देश महारथियों द्वारा ही होना चाहिये। दूसरे उन सबका जिनके अनुग्रह बिना यह प्रयास विफल होता कम से कम संस्मरण मात्र तो करना ही चाहिये। अस्तु।

मैं नहीं जानता कि अनुवाद कैसा हो पाया है पर हाँ यदि इससे एक भी छात्र इसके बताये मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित हुआ तो मेरा श्रम सार्थक होगा।

कर्नल वाडिंगटन महोदय ने इस पुस्तिका का परिचय लिखने की दया की है। इस अनुग्रह की आभार-स्वीकृति अशिष्टता के अतिरिक्त वैसी ही वंचना है जैसी कि उस दिवा-लिये की हुण्डी जिसे वह कभी सकार नहीं सकता। अपव्ययी अपने ऋणों का ब्योरा नहीं रखते क्योंकि वे यह जानते हैं कि वे कभी उऋण नहीं हो सकेंगे। कर्नल साहिब का समस्त जीवन

युवकों को सत्पथ पर प्रेरित करने में व्यतीत हुआ है। यह परिचय भी एक प्रोत्साहन और प्रेरणा ही है। ईश्वर करे कि मैं इस प्रोत्साहन के योग्य हो सकूँ।

गुरुवर ओबन्स महोदय ने न जाने क्या सोच कर इस तुच्छ समर्पण को अङ्गीकार कर लिया है। इसके लिये धन्यवाद देने का अर्थ केवल उन सब कृपाओं का अकृतज्ञता पूर्वक विस्मरण कर देना होगा जोकि उन्होंने समय समय पर मुझ पर की हैं। कदाचित् भविष्य में मैं उन्हें कोई उनके समर्पण के योग्य पुस्तक भेंट कर सकूँ, इसी आशा से संतोष लेरहा हूँ।

हिन्दी जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचक प्रोफेसर श्रीरामकृष्ण जी शुक्ल एम० ए० के श्रीचरणों में मैंने हिन्दी सीखी है। इस पुस्तिका में जो कुछ है उन्हीं श्रीचरणों का है—केवल त्रुटियों का दायित्व मुझ पर है क्योंकि वे मेरी हैं—और क्या कहूँ ?

इण्डियन प्रेस लिमिटेड के सहृदय श्रीमाधवप्रसाद जी शर्मा ने न सम्हाला होता तो यह पुस्तक छपती भी इसमें सन्देह है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

—योगेश्वरशर्मा गुलेरी

लेख-सूची

गम्भीर विषयों
पर
सरल विचार

१—ईश्वर की समुपस्थिति।

हम प्रतिदिन उन चीजों को देखते और उनके विषय में बातचीत करते हैं जो हमारे चारों तरफ़ मौजूद हैं—दिखाई देने वाले इस सुन्दर संसार के पदार्थों को और उन तमाम बातों को जो इस संसार की हैं—और हमारी बातचीत का ढङ्ग ऐसा होता है मानों संसार की यही सब वस्तुएँ सब कुछ हैं, जिनका कि हमारे

जीवन से सम्बन्ध है। परन्तु नहीं, इनके साथ ही और भी इनसे आवश्यक बातें हैं जो न तो इस संसार की ही है और न दृश्य ही हैं, बल्कि जिन का सम्बन्ध हमारे उस अपार्थिव जीवन से है जिसका कोई अन्त नहीं है। ये बातें आत्मा की हैं।

मैं समझता हूँ यह अच्छा होगा कि और बातों के साथ ही साथ कभी-कभी हम इन पर भी विचार किया करें। ऐसे विचारों से हमारा अधिक ही भला होगा। और यही मुख्य कारण है कि हम सब इस विद्यालय में एकत्रित हुए हैं, जिससे एक दूसरे पर अपना अपना प्रभाव डालते हुए हम एक दूसरे को अधिक अच्छा बना सकें—अच्छा न केवल बुद्धिमानी और बातचीत में ही, बल्कि हृदय और जीवन-चर्या में भी।

परन्तु अच्छा बनने से हमारा क्या तात्पर्य है? हमारा तात्पर्य किसी ऐसी बात से है जिसे हम सब समझते हैं और जो हम सबके लिए एक-सी है। ईश्वर को धन्यवाद है कि हमारे धर्म चाहे कितने ही भिन्न हों, हम सब इस विषय में एकमत हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा, और जब हम अच्छा बनने के विषय में कहते हैं तब हमारा अभिप्राय उस आदर्श भलाई की प्राप्ति से है जो तुम्हारे, मेरे और सबके लिए समरूप है! अतः हम उन विषयों पर बातचीत करेंगे जिन्हें हम सब मानते हैं—न कि उनपर जिनमें हमारा मतभेद है।

मैं चाहता हूँ कि यथाशक्ति प्रति रविवार को मैं तुम्हारे

सामने एक दो विचार उपस्थित करूँ और तुमसे उन पर विचार करने तथा उनके अनुसार कार्य करने की प्रार्थना करूँ, जिससे उनका प्रभाव तुम्हारे जीवन के ऊपरी कामों में दिखाई दे सके। आज के वार्तालाप का जो विषय मैंने पसन्द किया है वह है परमात्मा की पवित्र समुपस्थिति का अनुभव करना। यदि हम विश्वास के साथ ही इसका अनुभव भी कर सकते कि ईश्वर सदैव हमारे साथ है और हम में है तो मैं समझता हूँ कि हम जैसे हैं उससे कहीं अच्छे बन जाते।

हम सब इस बात को मानते हैं कि ईश्वर है। मानते ही नहीं हमको इस बात का पूर्ण विश्वास है। चाहे उसे परमेश्वर कहो, चाहे उसे खुदा कहो, हम सब इस विषय में एकमत हैं कि तमाम वस्तुओं का एक सर्वशक्तिमान उत्पन्न करने-वाला है 'जो केवल स्वर्ग और भूलोक का ही स्वामी नहीं है वरन हमारा और उन सब का, जिन्हें उसने पैदा किया है, पिता और स्नेहवान् रक्षक है। हमारा विश्वास है कि संसार में जो कुछ भी अच्छा है, जो कुछ भी पवित्र है, सबका उसी से आविर्भाव है। वही एकमात्र पूर्णस्वरूप है, तथा जो कुछ हममें अच्छी बात है उससे वह प्रसन्न होता है और जो कुछ बुरी है उससे वह घृणा करता है और उसे रोकता है।

हम यह भी मानते हैं कि हममें से प्रत्येक में एक वस्तु ईश्वरीय विद्यमान है जिसे हम अन्तःकरण या आत्मप्रकाश कहते हैं। इसी

को हम ईश्वर की वाणी कह सकते हैं। यह अन्त:करण सर्वत्र प्रत्येक मनुष्य में मौजूद रहता है तथा यह वह प्रकाश है जो प्रत्येक मनुष्य को प्रकाश देता है, जो अपनी झलक से कर्तव्य के पथ को आलोकित करता और प्रत्येक मनुष्य को उस पथ का अनुसरण करने के लिए उत्साहित करता है। अच्छा होता यदि मनुष्य इस उत्साह को ग्रहण करता, परन्तु हम जानते हैं कि अन्त:करण की वाणी के साथ ही साथ मनुष्य के भीतर एक ऐसी दुष्ट प्रकृति भी है जो सदैव उसे अपनी वासनाओं और इस अचिर-स्थायी संसार के दाम्भिक आडम्बरों को पूरा करने के लिए उकसाती रहती है। और जब मनुष्य सांसारिक फ़िक्रों में लग जाता है तब उसका हृदय ईश्वर की तरफ़ से शिथिल होने लगता है और उसकी आत्मा की आवाज़ भी, जो कि वास्तव में ईश्वर की आवाज़ है, क्षीण होने लगती है।

मेरी प्रार्थना है कि हम लोग जिस प्रकार भी हो सके अपने इस अन्त:करण को शुद्ध, पवित्र और उज्जवल बनाए रक्खें, जिससे इस नश्वर संसार के प्रलोभन हमको ईश्वर से दूर न हटा सकें और हम सदैव उसके समीप और उसकी पवित्र दृष्टि के सामने रह सकें।

यदि हम ईश्वर की समुपस्थिति का अनुभवमात्र कर सकते तो हम पापों में इतने लिप्त न हो जाते—हाँ, केवल यदि हम इस का अनुभव ही कर सकते। ज़रा सोचो तो सही, क्या इससे भी

अधिक विचित्र और महत्त्व की कोई और बात हो सकती है ? क्योंकि, देखो, इसका अर्थ क्या है ? इसका अर्थ है कि वह शक्तिशाली पवित्र आत्मा परमात्मा, जिसकी दया ज्ञान और शक्ति का कोई अन्त नहीं है, सदैव उसी प्रकार हमारी सहायता और रहनुमाई करने के लिए हमारे समीप है जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की करता है। हमको उचित है कि जो कुछ भी हम करें उसमें उसे अपना सहयोगी बनाएँ, जो कुछ भी हम कहें उसकी वाणी में कहें तथा जो कुछ भी हम विचारें वह उसीके मन और हृदय से विचारें। कहने का अभिप्राय यह है कि हमारे तमाम कार्यों में, शब्दों में और विचारों में वह हमारा साथी हो। तब हम पाप से दूर रहेंगे। जब हम ईश्वर की समीपता को भूल जाते हैं—और लगभग सदैव ही हम भूलते हैं—तब ही हम पाप करने को प्रेरित होते हैं। क्या तुम्हारा यह विचार है कि यह समझते हुए कि ईश्वर पास ही खड़ा है और वह जो कुछ तुम कहते हो सब सुनता है, तुम कभी धोखा देने का साहस कर सकते हो ? क्या तुम्हारा यह विचार है कि ईश्वर को सर्वदर्शी समझते हुए तुम कभी अपना समय नष्ट कर सकते हो ? यह समझते हुए कि वह सब कुछ सुन रहा है क्या तुम कभी किसी से क्रुद्ध या निर्दयतापूर्ण वाक्य कह सकते हो ? यदि तुमने उसकी समुपस्थिति का ज्ञान हो तो क्या कभी कोई अपवित्र विचार तुममें प्रवेश कर सकता है ? मैं तो नहीं समझता कि इसका अनुभव करते हुए कि ईश्वर हमारे कितना समीप है और किस प्रकार वह एक पिता

की भाँति अपने बच्चों पर दृष्टि रखता है और हमें प्रेम करता है, हम कभी कोई बुरा कर्म कर पाते।

अतएव मेरी इच्छा है कि आज तुम अपने साथ यहाँ से यह विचार ले जाओ कि–"ईश्वर मुझे देखता है और वह मेरे समीप है। जो कुछ भी मैं करता या कहता हूँ उससे छिपा नहीं है। उसकी दृष्टि मुझ पर एक परम पवित्र और उच्च आत्मा की ही हैसियत से नहीं है बल्कि पिता तथा मित्र की हैसियत से भी है। इसलिए मुझे चाहिए कि यद्यपि वह अदृश्य है तथापि उससे दूर न रहूँ तथा अपनी कठिनाई के समय उससे सहायता माँगू। कोई बात ऐसी नहीं है जिसे वह अति क्षुद्र समझ कर न करे और न कोई ऐसीही बात है जो उसके लिए बड़ी भारीहो। उसके साथ रहने से मैं दृढ़ तथा शुद्ध रहूँगा तथा बिना उसके मैं कोई भी काम नहीं कर सकूँगा"। यदि तुम उसका इस प्रकार ध्यान करोगे तो वह तुम्हारी सहायता करेगा—और मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास है।

अच्छा तो, क्या तुम उसकी समुपस्थिति का ध्यान रक्खोगे, और प्रतिदिन जब तुम सोकर उठोगे तब अपने मनमें कहोगे 'हे ईश्वर तू मेरे पास है'? और फिर रात को भी क्या तुम इसीप्रकार विचार करके सोओगे तथा दिन में भी यथासमय उसका ध्यान करोगे? इसप्रकार शायद विद्यालय की घण्टी सुनतेही उसका ध्यान करने की तुम्हारी आदत पड़ जाएगी। यह साधारण सहायताएँ बड़ी उपयोगी होती हैं और इन्द्रियों द्वारा इनका आत्मा पर बड़ा

प्रभाव पड़ता है। यद्यपि देखने में ये बातें संसार की मालूम होती हैं, परन्तु वह तुमको स्वर्गीय तथा पवित्र जीवन की ओर अग्रसर करती हैं। इसी भाँति यदि हम चाहेंगे तो संसार की अत्यन्त सामान्य बातें भी, हमारे प्रति दिन के साधारण कर्त्तव्य भी, एक दिव्य ज्योति से रंजित हो जाएँगे।

२—श्रद्धा या विश्वास ।

पिछले रविवार को मैंने ईश्वर की समुपस्थिति तथा उस आनन्द के विषय में कुछ कहा था जो हम उसके सामीप्य का अनुभव करने से प्राप्त कर सकते हैं। मैंने कहा था कि केवल उसे रुष्ट करने के भय से ही नहीं बल्कि सदैव सहायता करने को तत्पर एक स्नेहवान् रक्षक तथा मित्र समझकर भी हमको उसका ध्यान

करना चाहिए। और मैंने कहा था कि यदि हम उसके पवित्र संसर्ग का सच्चा लाभ उठा सकेंगे तो हम पापों से दूर रहेंगे और हमारा मनुष्यत्व उन्नति की उस अपरिमित सीमा को पहुँच जाएगा जिसे वह और किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता।

मैंने पिछले रविवार को यह भी कहा था कि हमारा ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास है। हम इस बात को ऐसी निश्चित सी मानते हैं, कि हमारे प्रति दिन के जीवन का यह इतना बड़ा भाग बन गई है कि हम कभी इसके विषय में सन्देह नहीं करते—कभी हम इस को प्रमाणित करने का प्रयत्न नहीं करते। और यदि हम चाहते भी, तो क्या अन्य विषयों की भाँति अपनी अपनी साधारण बुद्धि या शारीरिक इन्द्रियों से हम इसे प्रमाणित कर सकते थे? नहीं, यह हमारे सामर्थ्य के बाहर है। मनुष्य की क्षुद्रतर शक्ति की अपेक्षा ईश्वर की माया अनन्त है। हमारे मानुषिक चर्मचक्षु उसे देख नहीं सकते और हमारे हाथ उसे छू नहीं सकते। तथापि, जैसा मैंने पिछली बार कहा था, प्रत्येक मनुष्य में एक ऐसी वस्तु विद्यमान है जो उसे उसके कर्त्तव्य को तथा भलाई-बुराई को दिखाती रहती है। इसे मैंने अन्तःकरण या ईश्वरकी आवाज़ कहा था—आवाज़ जो जितनी ही अधिक हम उसकी अपेक्षा करते हैं उतनी ही अधिक स्पष्ट, दिव्य और उच्चतर होती जाती है—आवाज़ जो अन्य बातों की अपेक्षा ईश्वर की सत्ता का एक यथार्थ प्रमाण है। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि

यह उसी तरह का प्रमाण है जैसा रेखागणित के सिद्धान्तों का होता है। परन्तु हाँ, इससे मेरे मन को सन्तुष्टि हो जाती है। यह प्रमाण मनुष्यों के उस आंतरिक विश्वास पर अवलम्बित है जो समय के आरम्भ से वे ईश्वर में रखते आए हैं। यह अवलम्बित है उस न्यायसङ्गत अनुमान पर जिसके अनुसार इस विश्व की अद्भुत पद्धति और इसका सृष्टि-क्रम किन्हीं स्वतःप्रादुर्भूत शक्तियों का समवायमात्र न होकर किसी लोकोत्तर नियन्ता के नियमों का वशवर्ती है।

अन्तःकरण के साथ ही साथ एक दूसरी बात भी विचारणीय है। मेरा आशय हमारी सङ्कल्पशक्ति या इच्छाशक्ति से है। हमें विचारना है कि हमारी इच्छा स्वतन्त्र है या परतन्त्र। क्या हम शुभ कर्म या दुष्कर्म अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं अथवा हम असहाय रूप से अपने भाग्य के वश में हैं? क्या प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कार्य को अपनी इच्छा से करता है या इस विश्व के कार्य-कारण के स्वाभाविक नियम के अनुसार वह उसे मजबूरन करना पड़ता है। यदि सब बातों का सम्बन्ध 'कार्य कारण' ही से है—यदि ईश्वर, अन्तःकरण या इच्छा कोई वस्तु नहीं—तो नैतिक उत्तरदायित्व या नैतिक अपराध भी कोई चीज नहीं है। यदि क काम हमें करना पड़ेगा तो करना ही पड़ेगा—भलाई-बुराई सेए उसका क्या सम्बन्ध? ऐसी दशामें हम मनुष्य नही रहे, हम केवल भाग्य के उत्तरदायित्व-शून्य हाथों की कठपुतली रह गए। परन्तु

मित्रों, मैं इस पर विश्वास नहीं करता और मैं तुमसे भी इस पर विश्वास न करने का ही अनुरोध करता हूँ। संसार इस पर विश्वास नहीं करता क्योंकि सर्वत्र ही लोगों की बुद्धि ने मनुष्य को उसके कर्मों का उत्तरदायी ठहराया है—उसे स्वेच्छावृत्ति रखने वाला समझा है।

इस प्रकार हमारी इच्छाएँ स्वतन्त्र हैं। हम इसे जानते हैं। वह केवल अन्तःकरण के बन्धन से बँधी हैं, परन्तु इस प्रकार बँधी हुई होकर भी वह सबसे अधिक स्वतन्त्र हैं। परन्तु यदि हमारी इच्छाएँ स्वतन्त्र होकर अपना प्रभाव चारों तरफ़ के पदार्थों पर डालती हैं, जैसा कि हम सब जानते हैं, तो क्या हम अनुमान नहीं कर सकते—क्योंकि जहाँ हम प्रमाणित नहीं कर सकते वहाँ हम अनुमान ही करते हैं—कि सबके ऊपर एक ऐसी नैतिक इच्छा-शक्ति है जो समस्त पदार्थों की नियन्त्री है और जिसकी हमारी इच्छाएं केवल अंशस्वरूप हैं। लोग इस परम शक्ति को आदि-कारण, या जो कुछ उनके मनमें आवे, कहें, परन्तु हम इसे श्रद्धावश ईश्वर कहेंगे। यदि संसार में कोई इच्छा, कोई नीति, कोई पाप नहीं है तो क्या हम एक वास्तविक अनर्थकता को नहीं पहुँच गए हैं? हमको कार्यकारण के सिद्धांत और इस प्रकृतिमय संसार के अद्भुत नियमों में भी विश्वास रखना चाहिए, परन्तु यह समझते हुए कि उन का आविर्भाव ईश्वर से है—वह उसके प्रकाश की छितरी हुई किरणें हैं।

ईश्वर-सम्बन्धी इस विश्वास को ही हम श्रद्धा या भक्ति कहते

है। श्रद्धा की सहायता से ही हम उस वस्तु को सत्य मानते हैं जिसे हम अपने कल्पनाबल या इन्द्रियज्ञान से सिद्ध नहीं कर सकते। परन्तु वास्तविक श्रद्धा का अर्थ केवल श्रद्धा से ही नहीं है वरन उस श्रद्धा के अनुरूप ही कार्य भी करने से है। अतः यदि ईश्वर में हमारी सच्ची श्रद्धा है तो हम उसके अनुरूप ही कार्य भी करेंगे—सदैव उसे ध्यान में रक्खेंगे, सदा प्रसन्नतापूर्वक उसकी सेवा करेंगे। अब बताओ, क्या हमारी श्रद्धा इसी प्रकार की है? हम सब कहते हैं कि हम ईश्वर को मानते हैं, परन्तु क्या हमारे कर्म भी इस कथन के अनुकूल होते हैं? क्या हमारी श्रद्धा उदासीन और अनादर की नहीं होती है? क्या हम लगातार कितने ही दिन तक ईश्वर की समीपता को भूल नहीं जाते हैं? क्या हम इस जीवन की बातों को अपने ही प्रयत्नों का फल समझ कर यह नहीं भूल जाते हैं कि वह उसके कृपा और प्रेम से दिए हुए उपहार हैं? क्या हम इस संसार की माया में फँस उसकी सत्ता को भूलकर अपने चारों तरफ़ के पदार्थों को ही अपनी आवश्यकता की सामग्री और जीवन का लक्ष्य नहीं समझने लगते हैं? मुझे भय है कि हम में से अधिकांश की श्रद्धा इसी प्रकार की है। हम अपने को श्रद्धावान् बतलाते हैं। परन्तु वास्तव में हम ईश्वर से विमुख होकर रहते हैं। हम रहते हैं—श्रद्धा के सहारे नहीं, बल्कि अपनी आँखों के सहारे।

इस सर्वप्रधान विषय के साथ ही साथ हम अन्य सामान्य विषयों में भी श्रद्धा से काम ले सकते हैं, और हम प्रायः ऐसा

करते भी हैं। जो बातें या वस्तु हमने नहीं देखी हैं हम उन पर विश्वास करते हैं और इस विश्वास के आधार पर अपना काम करते हैं। हम बहुत सी बातों को बिना प्रमाणित किए ही उन साक्ष्यों के आधार पर, जिन्हें हम विश्वसनीय समझते हैं, स्वतः प्रामाणिक मान लेते हैं। उदाहरणार्थ, तुम लोग मानते हो कि इङ्गलैण्ड है। तुमने नक्शे में उसका चित्र देखा है, तुमने उसके विषय में पढ़ा सुना है और तुमने उन लोगों से बातचीत की है जो इङ्गलैण्ड से आए हैं। इन्हीं बातों से तुम्हें इङ्गलैण्ड के होने में विश्वास हो गया, यद्यपि तुमने स्वयं उसे कभी नहीं देखा है। इसके अतिरिक्त जितना ही अधिक इङ्गलैण्ड का ध्यान तुम्हारे मन में रहेगा उतना ही अधिक तुम उसके विषय में सोचोगे और अध्ययन करोगे, उतना ही अधिक इङ्गलैण्ड की सत्ता में तुम्हारा विश्वास दृढ़ होगा और उतना ही अधिक इस विश्वास का तुम्हारे प्रति दिन के वार्त्तालाप और कार्यों पर प्रभाव पड़ेगा।

यही बात ईश्वर में श्रद्धा रखने की है, क्योंकि और बातों की भाँति श्रद्धा या विश्वास भी अभ्यास से दृढ़ होता है। अतएव जितना ही हम ईश्वर के विषय में सोचेंगे उतनी ही हमारी उसमें श्रद्धा बढ़ती जायगी। यदि सचमुच हम उसको सोचना चाहेंगे तो शीघ्र ही हमारी आदत भी बन जाएगी। परन्तु खेद है कि हमारी वासनाएँ इतनी सुगमतया अदृश्य से दृश्य की ओर—ईश्वर से संसार की ओर—जाती हैं कि हम किसी विशेष

सहायता के बिना सफल ही नहीं हो सकते। ऐसी सहायताओं में से एक सहायता बड़ी सरल है जिसके विषय में पिछले रविवार को मैंने कुछ कहा था—अर्थात्, नियमपूर्वक सदैव ईश्वर की समुपस्थिति का विचार करते रहना। यह नियमित कार्य हमको एक श्रेष्ठ उच्चतम और आत्मिक कार्य की—ईश्वर की प्रार्थना की—तरफ़ अग्रसर करता है जिसके विषय में मैं अगले रविवार को कहूँगा।

३—प्रार्थना ।

पिछले सप्ताह मैंने श्रद्धा के सम्बन्ध में कहा था, और मैंने बतलाया था कि श्रद्धा वह विश्वास है जो हमको उन अदृष्ट पदार्थों के विषय में होता है जिनका हमने अपने नेत्रों से अनुभव नहीं किया है। मैंने यह भी बतलाया था कि इस प्रकार के विश्वास को हम जीवन की साधारण बातों तक में व्यवहार में लाते हैं।

उदाहरण के लिए, हमको इस बात का विश्वास है कि इङ्गलैण्ड है हम यह विश्वास है कि पृथ्वी गोल है; यदि एक विशेष दिशा की ओर हम जाएँ तो, हमें विश्वास है, हम हिमालय पर पहुँच जाएँगे। यद्यपि हम इन बातों को प्रमाणित नहीं कर सकते तथापि हमको उन पर विश्वास है। इसी भाँति, मैंने कहा था, हम अगोचर ईश्वर में भी विश्वास करते हैं; क्योंकि उसमें विश्वास करने के लिए हमारे पास बड़े अच्छे कारण मौजूद हैं।

आज मैं प्रार्थना के विषय में कहना चाहता हूँ। श्रद्धा के प्रश्न पर—ईश्वर-सम्बन्धी श्रद्धा के प्रश्न पर—विचार कर चुकने के बाद इस प्रश्न का विचार तुरन्त उपस्थित होता है। क्योंकि, प्रार्थना क्या है? यह, और कुछ नहीं, ईश्वर से वार्तालाप करना ही तो है। और, यदि ईश्वर में हमारी सच्ची श्रद्धा है तो हम निस्सन्देह इस बात को अपना गौरवपूर्ण अधिकार समझेंगे कि हम सदैव उससे उपदेश लेते रहें, सदा उसकी उत्साह-वर्धक मुसकान की ओर दृष्टि लगाए रहें। हम इस बात का अनुभव करेंगे कि उसके साथ इस तरह का समागम प्राप्त करना मानो इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग को प्राप्त कर लेना है।

इसी प्रकार, अपने पहले व्याख्यान में मैंने ईश्वर की समुपस्थिति का अनुभव करने के विषय में जो कुछ कहा था उसका भी आज के वक्तव्य से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। क्योंकि इस प्रकार ईश्वर की समुपस्थिति का अनुभव करना अपने

सर्वश्रेष्ठ पूर्ण रूप में उससे प्रार्थना करना ही है, और, जब मैंने यह कहा था कि हम अभ्यास करते करते उसके निरन्तर ध्यान की एक ऐसी अवस्था को पहुँच सकते हैं जब कि एक घंटी की आवाज़ सुन कर भी हमको ईश्वर की ही समुपस्थिति का ज्ञान होने लगे और हम उस आवाज़ को भी ईश्वर की ही आवाज़ समझने लगें—ऐसी आवाज़ जो कि हमें उसकी समुपस्थिति का ज्ञान कराती है—तो इस कथन से भी मेरा अभिप्राय प्रार्थना-कर्म का ही था। अपने प्रतिदिन के जीवन में इस तरह हमेशा ईश्वर के ध्यान में रहना ईश्वर की प्रार्थना ही है।

परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि हमको ईश्वर की समुपस्थिति के अनुभव करने का अवसर मिले—बहुतों को प्रायः इस प्रकार का अवसर मिलता रहता है—और फिर भी हम प्रार्थना से विमुख रहें,—हम उन साधारण उपायों पर भी ध्यान न दे सकें जो रात-दिन हम सबको उसकी याद दिलाने के लिए प्राप्त हैं। हम प्रायः ईश्वर के पवित्र नाम का उच्चारण करते हैं और कहा करते हैं—'ईश्वर ही जाने', 'ईश्वर तुम्हें सुखी रक्खे', 'ईश्वर की कृपा से', 'जय रामजी की' आदि। फिर भी—उसके नाम का उच्चारण करके भी—हम उसका ध्यान नहीं करते। जब हम कहते हैं, 'ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं बहुत अच्छी तरह हूँ" तो क्या हम सचमुच उसे अपने हृदय से धन्यवाद देते हैं? और फिर, एक बार नहीं, दो बार नहीं, अनेक बार हम ऐसे स्पष्ट चिन्ह देखा करते हैं जो हमको इस जीवन के अनिश्चय की याद दिलाते रहते

है, समयावधि और अनन्त के बीच के पतले परदे की—उस परदे की जो ईश्वर को हमसे छिपाए रहता है—याद दिलाते रहते हैं। फिर भी हम उसी रफ्तार से चले जाते हैं, मानो इन सब बातों का हमारे ऊपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता।

तथापि, जितने निश्चय के साथ मैं यहाँ खड़ा होकर तुमसे बातें कर रहा हूँ उतने ही निश्चय के साथ इस प्रकार की घटनाएँ भी हमारे लिए ईश्वर का संदेशा है जिनके द्वारा वह हमको अपने निकट बुलाता रहता है। मैं एक ऐसे ही संदेश का जिक्र करता हूँ जो अभी पिछले सप्ताह में हमको मिला है। तुमको मालूम है कि पिछले बुधवार को एक अरब नौकर हमारे बीच में से बुला लिया गया है। उसके स्वास्थ्य और शारीरिक बल में कोई भी खराबी नहीं मालूम होती थी कि वह सहसा बेहोश हो गया और गिर पड़ा और फिर पांच मिनट बाद एक प्राणहीन शरीर ही उस बलिष्ठ आदमी का शेष रह गया। उसका शरीर तो रह गया, परन्तु उसकी आत्मा कहाँ चली गई? हमारा विश्वास है कि इस आकस्मिक परिवर्तन द्वारा उसकी आत्मा इस संसार से विदा होकर ईश्वर के पास पहुँच गई। ईश्वर के पास पहुँच गई, और सदा के लिए! यदि हम इस पर गौर करें तो यह एक अद्भुत कल्पना मालूम होगी।—सदा के लिए ईश्वर के समीप रहने को चली गई! हममें से किसी व्यक्ति के साथ भी ऐसी घटना हो सकती थी। बुधवार को ही होजाती, या आज ही होजावे, या फिर कभी हो। यदि ऐसा होता तो क्या हम उसके लिए तैयार

थ ? इस अश्व की मृत्यु से हमको अपने जीवन के अनिश्चय, मृत्यु के निश्चय, की शिक्षा मिलनी चाहिए; इस बात की शिक्षा मिलनी चाहिए कि किसी न किसी समय हमको ईश्वर की निकटता का जीवन प्राप्त करना है—ऐसा जीवन कि जिसका कभी अन्त नहीं होता। क्या इस प्रकार के विचार कभी तुम्हारे मन में आए हैं ? यदि आए हैं तो क्या उनका कुछ फल भी हुआ है ?–तुम्हारे मन में इस बात का संकल्प उठा है कि भविष्य में हम अपने आपको सदा उसकी पवित्र दृष्टि के सामने रक्खेंगे जिससे कि जिस समय वह हमको बुलावे हम उसके पास खुशी से जा सकें ? यदि तुमने इस प्रकार का संकल्प किया है तो तुमने उस शिक्षा को ग्रहण कर लिया है जो ईश्वर हमको इस घटना के द्वारा देना चाहता था। वह शिक्षा यही है कि हम उसके समीपतर होकर रहें और प्रार्थना का जीवन व्यतीत करें।

प्रार्थना का जीवन व्यतीत करने का अभिप्राय यह है कि हम अपने को परमात्मा की इच्छा के आधीन बना लेते हैं और जो कुछ भी वह हमको देता है उसे हम उसका प्रसाद, उसका आशीर्वाद, समझ कर ग्रहण करते हैं। चाहे कुछ भी हो, हमारी बराबर यह धारणा रहती है कि वह हमारा पिता और मित्र है।

हम ईश्वर से सब कुछ कह सकते हैं, उससे सब कुछ माँग सकते हैं। अपने तमाम रहस्यों, अपनी तमाम आशंकाओं, आशाओं और इच्छाओं को हम उसके सर्वज्ञ और दयापूर्ण हृदय को सौंप सकते हैं। परन्तु उससे अपनी कामनाओं को

प्रकट करते समय हमें यह आशा न कर बैठनी चाहिए कि वह उन कामनाओं को भी पूरी करेगा जो उसकी पवित्र इच्छा के विरुद्ध हैं। यदि हम स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी बुरी वासना को या सांसारिक उन्नति की उससे प्रार्थना करेंगे तो हमें समझ रखना चाहिए कि वह स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी बातों के लिए प्रार्थना करना 'प्रार्थना करना' नहीं है और न वह ईश्वर के साथ अपने मन को लगाना ही है। यह तो ईश्वर से हटा कर अपने मन को दुनिया से लगाना है। ईश्वर से प्रार्थना करते समय—और मैं कह चुका हूँ कि हम किसी भी बात के लिये उससे प्रार्थना कर सकते हैं—हमको यह भी कहना चाहिए कि, "जो तुम्हारी इच्छा होगी वही होगा"। हम को यह समझना चाहिए कि हम जिस बात को चाहते हैं वह उस समय तक अच्छी नहीं है जब तक कि ईश्वर भी उसको न चाहता हो। इस प्रकार की प्रार्थना करने से हम को अद्भुत शान्ति, अद्भुत विश्राम मिलेगा—एक इस प्रकार का भाव प्राप्त होगा कि, हमारे भाग्य में चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा संरक्षण बड़े पवित्र और ऊंचे हाथों में है। यदि हम इस प्रकार का विश्वास रक्खेंगे कि—"मैंने ईश्वर से कह दिया। वह सब कुछ जानता है और वह प्यार करता है। उसकी ऐसी ही इच्छा है और उसी की इच्छा श्रेष्ठ है"—तो हम एक विचित्र प्रकाश और विचित्र आनन्द को प्राप्त कर लेंगे।

कुछ बातें ऐसी होती हैं (१) जिनके लिए हम सन्देह के

साथ ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं और, (२) कुछ ऐसी जिनके लिए हम निश्चय के साथ उससे कह सकते हैं। पहले वर्ग में वे सब बातें शामिल हैं जो ईश्वर की वशवर्तिनी प्रकृति के आधीन हैं और ईश्वर की इच्छानुसार किन्हीं नियमों के अनुसार होती हैं। प्रकृति में कारण और कार्य का सम्बन्ध देखने में आता है। यह नियम ईश्वर की इच्छा का ही स्वरूप है। इस लिए—यद्यपि वह चाहे तो अपने इस नियम को बदल सकता है, तथापि—हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह हम मनुष्यों की विचारहीन प्रार्थना पर उसे बदलेगा। और फिर, ऐसी दशा में, मान लो कि एक मनुष्य एक बात के लिए प्रार्थना करता है और दूसरा मनुष्य बिलकुल उसके खिलाफ़ बात के लिए,—तो क्या होगा? मानलो, एक किसान है जिनको एक विशेष प्रकार की फ़सल के लिए तरी की जरूरत है। वह ईश्वर से मेंह बरसाने के लिए प्रार्थना करता है। एक दूसरा किसान अपनी फ़सल के लिए, जिस को तरी हानिकारक है, चाहता है कि मेंह न बरसे। ये दोनों ही किसान अच्छे आदमी हैं और दोनों ही सच्चे दिल से प्रार्थना करते हैं। परन्तु क्या दोनों की प्रार्थनाएँ पूरी की जा सकती हैं? या, मानलो कि एक युद्ध में दोनों ही तरफ़ के लोग विजय की प्रार्थना करते हैं। परन्तु जीत तो एक ही तरफ़ की हो सकती है और दूसरी तरफ़ के लोग हारेंगे ही। तो क्या हम यह समझ लें कि ईश्वर ने एक तरफ़ वालों की प्रार्थना सुनली और उनको इस लिए विजय दिलाई कि उन का पक्ष सचाई की ओर था? मैं यह नहीं कहता कि

प्रकट करते समय हमें यह आशा न कर बैठनी चाहिए कि वह उन कामनाओं को भी पूरी करेगा जो उसकी पवित्र इच्छा के विरुद्ध हैं। यदि हम स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी बुरी वासना की या सांसारिक उन्नति की उससे प्रार्थना करेंगे तो हमें समझ रखना चाहिए कि वह स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी बातों के लिए प्रार्थना करना 'प्रार्थना करना' नहीं है और न वह ईश्वर के साथ अपने मन को लगाना ही है। यह तो ईश्वर से हटा कर अपने मन को दुनिया से लगाना है। ईश्वर से प्रार्थना करते समय—और मैं कह चुका हूँ कि हम किसी भी बात के लिये उससे प्रार्थना कर सकते हैं—हमको यह भी कहना चाहिए कि, "जो तुम्हारी इच्छा होगी वही होगा"। हम को यह समझना चाहिए कि हम जिस बात को चाहते हैं वह उस समय तक अच्छी नहीं है जब तक कि ईश्वर भी उसको न चाहता हो। इस प्रकार की प्रार्थना करने से हम को अद्भुत शान्ति, अद्भुत विश्राम मिलेगा—एक इस प्रकार का भाव प्राप्त होगा कि, हमारे भाग्य में चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा संरक्षण बड़े पवित्र और ऊंचे हाथों में है। यदि हम इस प्रकार का विश्वास रक्खेंगे कि—"मैंने ईश्वर से कह दिया। वह सब कुछ जानता है और वह प्यार करता है। उसकी ऐसी ही इच्छा है और उसी की इच्छा श्रेष्ठ है"—तो हम एक विचित्र प्रकाश और विचित्र आनन्द को प्राप्त कर लेंगे।

कुछ बातें ऐसी होती हैं (१) जिनके लिए हम सन्देह के

साथ ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं और, (२) कुछ ऐसी जिनके लिए हम निश्चय के साथ उससे कह सकते हैं। पहले वर्ग में वे सब बातें शामिल हैं जो ईश्वर की वशवर्तिनी प्रकृति के आधीन हैं और ईश्वर की इच्छानुसार किन्हीं नियमों के अनुसार होती हैं। प्रकृति में कारण और कार्य का सम्बन्ध देखने में आता है। यह नियम ईश्वर की इच्छा का ही स्वरूप है। इस लिए—यद्यपि वह चाहे तो अपने इस नियम को बदल सकता है, तथापि—हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह हम मनुष्यों की विचारहीन प्रार्थना पर उसे बदलेगा। और फिर, ऐसी दशा में, मान लो कि एक मनुष्य एक बात के लिए प्रार्थना करता है और दूसरा मनुष्य बिलकुल उससे खिलाफ़ बात के लिए,—तो क्या होगा? मानलो, एक किसान है जिसको एक विशेष प्रकार की फ़सल के लिए तरी की जरूरत है। वह ईश्वर से मेंह बरसाने के लिए प्रार्थना करता है। एक दूसरा किसान अपनी फ़सल के लिए, जिस को तरी हानि-कारक है, चाहता है कि मेंह न बरसे। ये दोनों ही किसान अच्छे आदमी हैं और दोनों ही सच्चे दिल से प्रार्थना करते हैं। परन्तु क्या दोनों की प्रार्थनाएँ पूरी की जा सकती हैं? या, मानलो कि एक युद्ध में दोनों ही तरफ़ के लोग विजय की प्रार्थना करते हैं। परन्तु जीत तो एक ही तरफ़ की हो सकती है और दूसरी तरफ़ के लोग हारेंगे ही। तो क्या हम यह समझ लें कि ईश्वर ने एक तरफ़ वालों की प्रार्थना सुनली और उनको इस लिए विजय दिलाई कि उन का पक्ष सचाई की ओर था? मैं यह नहीं कहता कि

प्रकट करते समय हमें यह आशा न कर बैठनी चाहिए कि वह उन कामनाओं को भी पूरी करेगा जो उसकी पवित्र इच्छा के विरुद्ध हैं। यदि हम स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी बुरी वासना को या सांसारिक उन्नति की उससे प्रार्थना करेंगे तो हमें समझ रखना चाहिए कि वह स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी बातों के लिए प्रार्थना करना 'प्रार्थना करना' नहीं है और न वह ईश्वर के साथ अपने मन को लगाना ही है। यह तो ईश्वर से हटा कर अपने मन को दुनिया से लगाना है। ईश्वर से प्रार्थना करते समय—और मैं कह चुका हूँ कि हम किसी भी बात के लिये उससे प्रार्थना कर सकते हैं—हमको यह भी कहना चाहिए कि, "जो तुम्हारी इच्छा होगी वही होगा"। हम को यह समझना चाहिए कि हम जिस बात को चाहते हैं वह उस समय तक अच्छी नहीं है जब तक कि ईश्वर भी उसको न चाहता हो। इस प्रकार की प्रार्थना करने से हम को अद्भुत शान्ति, अद्भुत विश्राम मिलेगा—एक इस प्रकार का भाव प्राप्त होगा कि, हमारे भाग्य में चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा संरक्षण बड़े पवित्र और ऊंचे हाथों में है। यदि हम इस प्रकार का विश्वास रक्खेंगे कि—"मैंने ईश्वर से कह दिया। वह सब कुछ जानता है और वह प्यार करता है। उसकी ऐसी ही इच्छा है और उसी की इच्छा श्रेष्ठ है"—तो हम एक विचित्र प्रकाश और विचित्र आनन्द को प्राप्त कर लेंगे।

कुछ बातें ऐसी होती हैं (१) जिनके लिए हम सन्देह के

साथ ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं और, (२) कुछ ऐसी जिनके लिए हम निश्चय के साथ उससे कह सकते हैं। पहले वर्ग में वे सब बातें शामिल हैं जो ईश्वर की वशवर्तिनी प्रकृति के आधीन हैं और ईश्वर की इच्छानुसार किन्हीं नियमों के अनुसार होती हैं। प्रकृति में कारण और कार्य का सम्बन्ध देखने में आता है। यह नियम ईश्वर की इच्छा का ही स्वरूप है। इस लिए—यद्यपि वह चाहे तो अपने इस नियम को बदल सकता है, तथापि—हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह हम मनुष्यों की विचारहीन प्रार्थना पर उसे बदलेगा। और फिर, ऐसी दशा में, मान लो कि एक मनुष्य एक बात के लिए प्रार्थना करता है और दूसरा मनुष्य बिलकुल उससे खिलाफ़ बात के लिए,—तो क्या होगा? मानलो, एक किसान है जिसको एक विशेष प्रकार की फ़सल के लिए तरी की ज़रूरत है। वह ईश्वर से मेंह बरसाने के लिए प्रार्थना करता है। एक दूसरा किसान अपनी फ़सल के लिए, जिस को तरी हानिकारक है, चाहता है कि मेंह न बरसे। ये दोनों ही किसान अच्छे आदमी हैं और दोनों ही सच्चे दिल से प्रार्थना करते हैं। परन्तु क्या दोनों की प्रार्थनाएँ पूरी की जा सकती हैं? या, मानलो कि एक युद्ध में दोनों ही तरफ़ के लोग विजय की प्रार्थना करते हैं। परन्तु जीत तो एक ही तरफ़ की हो सकती है और दूसरी तरफ़ के लोग हारेंगे ही। तो क्या हम यह समझ लें कि ईश्वर ने एक तरफ़ वालों की प्रार्थना सुनली और उनको इस लिए विजय दिलाई कि उन का पक्ष सचाई की ओर था? मैं यह नहीं कहता कि

प्रगट करते समय हमें यह आशा न कर बैठनी चाहिए कि वह उन कामनाओं को भी पूरी करेगा जो उसकी पवित्र इच्छा के विरुद्ध हैं। यदि हम स्वार्थ के वशीभूत होकर किसी बुरी कामना की या सांसारिक उन्नति की उससे प्रार्थना करेंगे तो हमें समझ रखना चाहिए कि वह स्वीकार नहीं करेगा। ऐसी बातों के लिए प्रार्थना करना 'प्रार्थना करना' नहीं है और न वह ईश्वर के साथ अपने मन को लगाना ही है। यह तो ईश्वर से हटा कर अपने मन को दुनिया से लगाना है। ईश्वर से प्रार्थना करते समय—और मैं कह चुका हूँ कि हम किसी भी बात के लिये उससे प्रार्थना कर सकते हैं—हमको यह भी कहना चाहिए कि, "जो तुम्हारी इच्छा होगी वही होगा"। हम को यह समझना चाहिए कि हम जिस बात को चाहते हैं वह उस समय तक अच्छी नहीं है जब तक कि ईश्वर भी उसको न चाहता हो। इस प्रकार की प्रार्थना करने से हम को अद्भुत शान्ति, अद्भुत विश्राम मिलेगा—एक इस प्रकार का भाव प्राप्त होगा कि, हमारे भाग्य में चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारा संरक्षण बड़े पवित्र और ऊंचे हाथों में है। यदि हम इस प्रकार का विश्वास रक्खेंगे कि—"मैंने ईश्वर से कह दिया। वह सब कुछ जानता है और वह प्यार करता है। उसकी ऐसी ही इच्छा है और उसी की इच्छा श्रेष्ठ है"—तो हम एक विचित्र प्रकाश और विचित्र आनन्द को प्राप्त कर लेंगे।

कुछ बातें ऐसी होती हैं (१) जिनके लिए हम सन्देह के

साथ ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं और, (२) कुछ ऐसी जिनके लिए हम निश्चय के साथ उससे कह सकते हैं। पहले वर्ग में वे सब बातें शामिल हैं जो ईश्वर की वशवर्तिनी प्रकृति के आधीन हैं और ईश्वर की इच्छानुसार किन्हीं नियमों के अनुसार होती हैं। प्रकृति में कारण और कार्य का सम्बन्ध देखने में आता है। यह नियम ईश्वर की इच्छा का ही स्वरूप है। इस लिए—यद्यपि वह चाहे तो अपने इस नियम को बदल सकता है, तथापि—हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह हम मनुष्यों की विचारहीन प्रार्थना पर उसे बदलेगा। और फिर, ऐसी दशा में, मान लो कि एक मनुष्य एक बात के लिए प्रार्थना करता है और दूसरा मनुष्य बिलकुल उससे खिलाफ़ बात के लिए,—तो क्या होगा? मानलो, एक किसान है जिसको एक विशेष प्रकार की फ़सल के लिए तरी की ज़रूरत है। वह ईश्वर से मेह बरसाने के लिए प्रार्थना करता है। एक दूसरा किसान अपनी फ़सल के लिए, जिस को तरी हानि-कारक है, चाहता है कि मेह न बरसे। ये दोनों ही किसान अच्छे आदमी हैं और दोनों ही सच्चे दिल से प्रार्थना करते हैं। परन्तु क्या दोनों की प्रार्थनाएँ पूरी की जा सकती हैं? या, मानलो कि एक युद्ध में दोनों ही तरफ़ के लोग विजय की प्रार्थना करते हैं। परन्तु जीत तो एक ही तरफ को हो सकती है और दूसरी तरफ के लोग हारेंगे ही। तो क्या हम यह समझ लें कि ईश्वर ने एक तरफ़ वालों की प्रार्थना सुनली और उनको इस लिए विजय दिलाई कि उन का पक्ष सचाई की ओर था? मैं यह नहीं कहता कि

ईश्वर सचाई के पक्ष को विजय नहीं देता। मेरा कहना केवल यह है कि ईश्वर तो व्यवस्था और नियम का ईश्वर है और जो कुछ भी वह करता है वह अपनी इच्छा के अनुसार सब की भलाई के लिए करता है। अतः हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह एक पक्ष की इस प्रकार की स्वार्थपूर्ण प्रार्थनाओं द्वारा अपने नियम से विचलित हो जाएगा। हम चाहें तो इस प्रकार की प्रार्थनाएँ कर सकते हैं; परन्तु ऐसी प्रार्थनाएँ सच्ची प्रार्थनाएँ नहीं हैं और उनका तत्काल या अवश्य फल होगा, इस की आशा हमें नहीं करना चाहिए।

तब फिर कौनसी बातें हैं जिनके लिए हम निश्चय के साथ प्रार्थना कर सकते हैं कि वे पूरी होंगी? हम उन बातों के लिए प्रार्थना कर सकते हैं जो शुद्ध हैं, पवित्र हैं, ईश्वरीय हैं। वे बातें इस संसार की बातें नहीं हैं—धन नहीं, जागीर नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, यश नहीं, लौकिक ज्ञान या विद्वता भी नहीं। ये बातें वह हैं जिनसे मनुष्य, स्त्री अथवा बालक अच्छे कहलाते हैं, जो मनुष्य को अच्छा बनाती हैं और उसे इस योग्य करती हैं कि वह पवित्र और महान् आत्माओं का सहवास प्राप्त कर सके। क्योंकि, हम सब मृत्यु के बाद ईश्वर का सहवास प्राप्त करने को आशा रखते हैं। ये बातें हृदय तथा मन से सम्बन्ध रखने वाले गुण हैं जिन को केवल ईश्वर ही हमें भरपूर ढंग से दे सकता है; क्योंकि वही उनका खजाना है, उनका उदयस्थल है। शुद्धता, पवित्रता,

सचाई, सज्जनता, अपने मनुष्य भाइयों का प्रेम, आत्मत्याग—ये तथा इसी प्रकार के अन्य गुण—ईश्वर की देन हैं; और ये ऐसी वस्तुएँ हैं कि जिनको अगर हम उससे माँगें तो, हमें विश्वास है, वह हमें अवश्य देगा।

अपने आगामी भाषणों में मैं इन गुणों के सम्बन्ध में तुम से कुछ कहूँगा और हम इन पर अलग अलग विचार करेंगे। इन गुणों का महत्व असामान्य है। अपने प्रारम्भिक भाषणों में मेरा उद्योग था कि हम किसी एक आधार को ग्रहण करलें जिस के सहारे मैं अपना बाद का वक्तव्य तुम्हारे सामने उपस्थित कर सकूँ। इसी लिए इन प्रारम्भिक तीन भाषणों में मैंने तुमको ईश्वर की समुपस्थिति तथा उस प्रार्थना के विषय में बतलाया है जिसकी स्वाभाविक उत्पत्ति हमारी ईश्वर-सम्बन्धी श्रद्धा से ही हो सकती है। क्योंकि, मेरा यह विश्वास है कि ईश्वर की श्रद्धा के बिना हमारा आचार और चरित्र-गठन निर्जीव और शक्तिहीन है, जिस प्रकार कि सूर्य की स्वस्थ और बलयुक्त किरणों के सामने चन्द्रमा की किरणें रोगिणी सी मालूम होती हैं। मेरा यह भी विश्वास है कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता; परन्तु परमात्मा की शक्ति से वह, इस सारहीन और पतित ज़माने में भी ऐसे ऊँचे और उदार कर्म कर सकता है जैसे कि पुराने किसी बड़े से बड़े महापुरुष ने शायद न किए होंगे।

४— कर्तव्य ।

कर्तव्य जैसा कोई पदार्थ है, इसको हम सब मानते हैं। हम सब इस बात को मानते हैं कि एक प्रकार से कार्य करना हमारा कर्तव्य है, हमको उसी प्रकार करना चाहिए क्योंकि वह उचित है। किसी भी समय हम अपने मन में प्रश्न करें कि हमारा कर्तव्य-कर्म क्या है—और हम सच्चे हृदय से उस कर्म को करना चाहें -

तो हमको उसका उत्तर अवश्य मिलेगा; और यही उत्तर सर्वश्रेष्ठ उत्तर होगा। यह उत्तर हमको अपने अन्तःकरण से प्राप्त होगा जिसके बारे में मैं अपने पहले व्याख्यान में बतला चुका हूं कि वह एक दैवी चेतावनी है, ईश्वर की आवाज़ है।

इस प्रकार 'कर्तव्य' का अर्थ हुआ 'वह काम जो हम में से हरेक को करना चाहिए।' इसका अभिप्राय यह नहीं है कि हम सबका एक-सा ही कर्तव्य है; क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि एक पिता का कर्तव्य एक पुत्र के कर्तव्य से भिन्न होगा, एक ठाकुर साहब (राजा) का कर्तव्य एक राजकुमार के कर्तव्य से भिन्न होगा, एक गुरु का कर्तव्य एक शिष्य के कर्तव्य से भिन्न होगा तथा एक सैनिक का कर्तव्य एक कृषक के कर्तव्य से भिन्न होगा। तथापि, यह निश्चित है कि—चाहे हम बड़े आदमी हों या छोटे आदमी, धनी हों या निर्धन, वृद्ध हों या युवा, पुरुष हों या स्त्री अथवा बालक—हम सबका कोई न कोई कर्तव्य अवश्य है। हम में से प्रत्येक के लिए कुछ न कुछ कर्तव्य है, और यह कर्तव्य दो प्रकार का है—(१) ईश्वर के प्रति कर्तव्य, और (२) मनुष्य के प्रति कर्तव्य।

मैं कह सकता हूं कि हमारे यह दो प्रकार के कर्तव्य बहुत बड़े अंश में एक बालक के उन दो कर्तव्यों के समान हैं जो उसको अपने पिता और अपने भाइयों के प्रति करने होते हैं—इसलिए कि हमसब एक बहुत बड़े और सार्वजनिक कुटुम्ब के बालक हैं, जिसमें

हम सब समान रूप से सम्मिलित हैं और जिसका मुखिया या सरपरस्त परमात्मा है। और फिर, जिस प्रकार हम सब को, कर्त्तव्य रूप से, अपने पार्थिव पिता को प्रेम करना तथा उसकी आज्ञा माननी चाहिए उसी प्रकार हमें पूर्ण रूप से उस ईश्वर को प्रेम करना तथा उसकी आज्ञा माननी चाहिए जो सब का पिता है। पुनश्च, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि बालक अपने भाइयों तथा बहनों को प्यार करता है हमें अपने साथियों, दूसरे मनुष्यों, को प्यार करना चाहिए।

अच्छा तो, ईश्वर के प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? अपने पार्थिव पिता की भाँति हम उसे देख नहीं सकते; तथापि श्रद्धा द्वारा हम उसमें विश्वास रख सकते हैं। हम उसे अपने हृदय से प्यार कर सकते हैं, क्योंकि वह प्रेमपूर्वक हमारी चिन्ता रखता है; और अपनी तमाम बातों में, उन तमाम बातों में जो कि हम करते हैं, हम उसका सर्वदा ध्यान रखते हुए उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर सकते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक बालक अपने पिता को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है। यही हमारा ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य है—उसमें विश्वास रखना, उसे प्रेम करना, अपने तन और मन से शक्तिभर उसकी सेवा करना। ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य के सम्बन्ध में मैं अपने पिछले तीन व्याख्यानों में तुमको बतला चुका हूं। उस कर्त्तव्य को हम कोई आसान कर्त्तव्य नहीं कह सकते, क्योंकि इसके लिए निष्कपट श्रद्धा की आवश्यकता है।

इस संसार में जहाँ कि प्रत्येक वस्तु में इन्द्रियों के अनुभव द्वारा ही विश्वास किया जाता है, हमको अपनी श्रद्धा की बड़ी सावधानी और चौकसी के साथ रक्षा करनी चाहिए। परन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम अपने दैनिक व्यवहार में ही अभ्यास द्वारा अपने को शिक्षित कर कर के इस श्रद्धा को दृढ़ बना सकते हैं। इन व्यावहारिक उपायों में सब से बढ़िया उपाय प्रार्थना है। और इस बात का मुझे पूरा निश्चय है कि यदि एक बार हमारा ईश्वर और ईश्वर की समुपस्थिति में पक्का विश्वास होजाए--(और इसीको मैंने उसके प्रति हम लोगों के कर्त्तव्य का पहला अंग बतलाया है) —तब हमारे कर्त्तव्य के शेष दोनों अंग अपने आप ही सिद्ध होजाएँगे। यदि हम सचमुच उसमें विश्वास करते हैं तो हम स्वाभाविक रूप से उसे प्रेम भी करेंगे ही; और यदि हम उसे प्रेम करते हैं तो हम धन्यवाद-पूर्वक उसकी सेवा भी अवश्य ही करेंगे।

अब मैं कर्त्तव्य के दूसरे अंश, अर्थात् मनुष्यमात्र के प्रति हम लोगों के कर्त्तव्य, को लेता हूं। यह कर्त्तव्य इस छोटे से वाक्य द्वारा संक्षेप में बतलाया जा सकता है कि—"हम अपने पड़ोसियों को भी वैसा ही प्रेम करें जैसा हम अपने आप को करते है"—और यह कर्त्तव्य हमारे सामने सदा ही उपस्थित रहता है। हमको दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये जैसा कि हम चाहते हैं कि वे हमारे साथ करें। हमको अपनी खुशी का नहीं बल्कि दूसरों की खुशी का ध्यान रखना चाहिए। हम इसी

हम सब समान रूप से सम्मिलित हैं और जिसका मुखिया या सरपरस्त परमात्मा है। और फिर, जिस प्रकार हम सब को, कर्त्तव्य रूप से, अपने पार्थिव पिता को प्रेम करना तथा उसकी आज्ञा मानना चाहिए उसी प्रकार हमें पूर्ण रूप से उस ईश्वर को प्रेम करना तथा उसकी आज्ञा माननी चाहिए जो सब का पिता है। पुनश्च, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि बालक अपने भाइयों तथा बहनों को प्यार करता है हमें अपने साथियों, दूसरे मनुष्यों, को प्यार करना चाहिए।

अच्छा तो, ईश्वर के प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है? अपने पार्थिव पिता की भाँति हम उसे देख नहीं सकते; तथापि श्रद्धा द्वारा हम उसमें विश्वास रख सकते हैं। हम उसे अपने हृदय से प्यार कर सकते हैं, क्योंकि वह प्रेमपूर्वक हमारी चिन्ता रखता है; और अपनी तमाम बातों में, उन तमाम बातों में जो कि हम करते हैं, हम उसका सर्वदा ध्यान रखते हुए उसे प्रसन्न करने की चेष्टा कर सकते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि एक बालक अपने पिता को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है। यही हमारा ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य है—उसमें विश्वास रखना, उसे प्रेम करना, अपने तन और मन से शक्तिभर उसकी सेवा करना। ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य के सम्बन्ध में मैं अपने पिछले तीन व्याख्यानों में तुमको बतला चुका हूं। उस कर्त्तव्य को हम कोई आसान कर्त्तव्य नहीं कह सकते, क्योंकि इसके लिए निष्कपट श्रद्धा की आवश्यकता है।

इस संसार में जहाँ कि प्रत्येक वस्तु में इन्द्रियों के अनुभव द्वारा ही विश्वास किया जाता है, हमको अपनी श्रद्धा की बड़ी सावधानी और चौकसी के साथ रक्षा करनी चाहिए। परन्तु, जैसा कि मैं कह चुका हूं, हम अपने दैनिक व्यवहार में ही अभ्यास द्वारा अपने को शिक्षित कर कर के इस श्रद्धा को दृढ़ बना सकते हैं। इन व्यावहारिक उपायें में सब से बढ़िया उपाय प्रार्थना है। और इस बात का मुझे पूरा निश्चय है कि यदि एक बार हमारा ईश्वर और ईश्वर की समुपस्थिति में पक्का विश्वास होजाए--(और इसीको मैंने उसके प्रति हम लोगों के कर्त्तव्य का पहला अंग बतलाया है) —तब हमारे कर्त्तव्य के शेष दोनों अंग अपने आप ही सिद्ध होजाएँगे। यदि हम सचमुच उसमें विश्वास करते हैं तो हम स्वाभाविक रूप से उसे प्रेम भी करेंगे ही; और यदि हम उसे प्रेम करते हैं तो हम धन्यवाद-पूर्वक उसकी सेवा भी अवश्य ही करेंगे।

अब मैं कर्त्तव्य के दूसरे अंश, अर्थात् मनुष्यमात्र के प्रति हम लोगों के कर्त्तव्य, को लेता हूं। यह कर्त्तव्य इस छोटे से वाक्य द्वारा संक्षेप में बतलाया जा सकता है कि—"हम अपने पड़ोसियों को भी वैसा ही प्रेम करें जैसा हम अपने आप को करते हैं"—और यह कर्त्तव्य हमारे सामने सदा ही उपस्थित रहता है। हमको दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये जैसा कि हम चाहते हैं कि वे हमारे साथ करें। हमको अपनी खुशी का नहीं बल्कि दूसरों की खुशी का ध्यान रखना चाहिए। हम इसी

बात को अपना सब से बड़ा सुख मानें कि हम दूसरों को सुखी बना सकते हैं।

इस कर्त्तव्य का भी पालन सख्त नहीं है। परन्तु कोई भी कार्य जो श्रेष्ठ और उच्च होता है सरल नहीं होता; और हमें कठिनाइयों को देख कर घबड़ाना नहीं चाहिए। कोई भी कठिनाई ऐसी नहीं है जिसे हम ईश्वर की सहायता से पार नहीं कर सकते हो। साथियों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन इसलिये आसान नहीं है कि हमारे स्वभावों में पाप और स्वार्थ भरा हुआ है और अपनी स्वार्थपूर्ण वासनाओं से अंधे होकर हम अपने साथियों को तो बिलकुल भूल जाते हैं और अपने ही बारे में सोचने लगते हैं। और फिर ऐसा होता है कि अपने असाधु सांसारिक उद्देश्यों तथा अभ्युदय के अनुसरण में हम न केवल अपने साथियों का भला ही नहीं करते, बल्कि उनको हानि तक पहुँचा बैठते हैं।

परन्तु आज से, मेरी प्रार्थना है कि, हम सब इस बात का प्रयत्न करें—और ईश्वर हमारी सहायता करेगा—कि हम अपने साथियों का अधिक विचार रक्खें और अपना कम। इरादा कर लो कि अब से अपने आस-पास के लोगों के साथ कृपापूर्ण व्यवहार करेंगे। इरादा कर लो कि उनके लिए तुम्हारे कृपापूर्ण ही विचार होंगे। शायद यहाँ, पाठशाला के भीतर, हम इस अन्तिम दृष्टि से अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में अधिक असावधान हो जाते हैं। तथापि, मेरे मित्रों! अपने इस समाज में, जैसा कि

हमें यहाँ प्राप्त है, उदारता तथा सहानुभूति के भाव रखना ही हमारा विशेष कर्तव्य है। हम में से प्रत्येक को ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने मित्र की प्रतिष्ठा को अपनी प्रतिष्ठा से अधिक महत्त्व की बात समझे। यहाँ एक दूसरे के प्रति तुम्हारा कर्तव्य यह है कि तुम्हारा हृदय प्रेमपूर्ण, निस्वार्थ और दयावान् हो— तुम अपने मित्र के उपभोग के लिए उस वस्तु को दे डालने को तैयार रहो, जिसे तुम अपने उपभोग के लिए चाहते हो; दूसरों के सुख में अपना सुख समझो; उनके चरित्र के श्रेष्ठ अंश के ऊपर ही तुम्हारी दृष्टि जाए, न कि बुरे अंश के ऊपर; उनके सद्गुणों पर तुम विश्वास कर सको और उनके दुर्गुणों को क्षमा। मेरे मित्रों! यदि तुम अपनी पाठशाला में इस प्रकार का व्यवहार रक्खोगे तो तुम में से हरेक इस पाठशाला में ही, यद्यपि अभी तुम लड़के ही हो, पृथ्वी पर एक देवदूत तथा मनुष्यों में देवता के समान हो जाएगा।

क्या तुमने इस प्रकार का व्यवहार करने की चेष्टा की है? क्या तुमने दूसरों की बुराइयाँ सुन कर उनको सच मानने से इन्कार किया है? क्या तुमने उनको फैलने से रोका है? या फिर, इसके विपरीत, तुम्हारी इच्छा उन पर विश्वास करने और उन्हें दूसरों से कहने के लिए हुई है? दूसरों की प्रशंसा सुन कर तुमको प्रसन्नता भी हुई है क्या? अपने आपको प्रसन्न करने की अपेक्षा उनको प्रसन्न करने में ही तुमको कभी सुख मिला है कि नहीं? अपने खेल-कूद में तुमने हमेशा ईमानदारी का बर्ताव

रक्खा है क्या ? क्या तुम वचन और कर्म से अपने छोटों के प्रति दयावान् तथा बड़ों के प्रति आज्ञाकारी और कर्तव्यपरायण रहे हो ? संक्षेप में, क्या तुमने इस बात का प्रयत्न किया है कि तुम प्रेम, उदारता और सहानुभूति के साथ दूसरों के प्रति भी वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें ? मुझे भी अपने विषय में इन प्रश्नों का उत्तर देना है और तुम्हारे सम्बन्ध में मैं इनका उत्तर तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूँ । कितना अच्छा होता यदि हम इनका उत्तर 'हाँ' कहके दे सकते । ये प्रश्न ऐसे हैं, कि जहाँ कहीं भी कोई हो, प्रत्येक को अपने हृदय से पूछने चाहिएँ । परन्तु मैं समझता हूँ कि हम—जैसे लोगों को, जो पाठशालाओं में पढ़ते हैं, इनकी विशेष आवश्यकता है ।

एक और प्रश्न जो तुम लोगों के लिए, जिनकी कि इस समय विद्यार्थी-अवस्था है, उपयोगी है यह है कि—"क्या मैं अपने से बड़ों के प्रति, उन लोगों के प्रति जो यहाँ मेरे ऊपर अधिकारी बनाकर बिठाए गए हैं, अपने कर्त्तव्य का पालन करता हूँ ? क्या मैं उनका आज्ञाकारी हूँ, क्या उनके लिए मेरा आदरभाव है ? जो कुछ वे मुझसे करने को कहते हैं, जो कुछ वे मुझे याद करने—सीखने—के लिए बतलाते हैं, क्या मैं अपनी सामर्थ्य-भर उसे पूरा करता हूँ ? इस विषय में तुम्हारा साफ़ कर्तव्य यह है कि तुम उन लाभों को ग्रहण करो जो कि तुम्हारे लिए यहाँ उन लोगों द्वारा उपस्थित किए गए हैं जिनकी केवल इच्छा तुम्हारी भलाई ही है और जिनका, कर्त्तव्यरूप से,

तुम्हें आज्ञापालन करना चाहिए। इन लाभों तथा अवसरों को ग्रहण न करना कर्तव्यहीनता ही नहीं, वल्कि एक बड़ी भारी मूर्खता और अकृतज्ञता है। विश्वास करो, मैं तुमसे सच कहता हूँ, कि जिन जिन लोगों ने अपने प्रारम्भिक जीवन में अपने शिक्षालय के लाभों तथा अवसरों का तिरस्कार किया है उन सबको बाद में अपने इस आचरण की मूर्खता पर हमेशा अफ़सोस करना पड़ा है।

अतएव मेरी तुम से प्रार्थना है कि आज तुम अपने साथ इन दो विचारों को लेते जाओ, और इस सप्ताह इन पर विचार करना:—(१) यह मेरा कर्तव्य है कि मैं सबके साथ, विशेष रूप से अपने विद्यालय के साथियों के साथ, दयापूर्ण व्यवहार रक्खूँ; कभी ऐसी चुगली की बातों या किस्सों पर विश्वास न करूँ जिससे उनकी हानि या बदनामी होती हो; कभी किसी को न छेड़ूँ, न किसी पर हँसूँ, बल्कि सबको प्रेम करूँ और सबका प्रेम प्राप्त करूँ और यदि उनसे मेरा कोई अपराध भी हो जाए तो उनको क्षमा कर दूं। (२) यह मेरा कर्तव्य है कि पाठशाला में जो दैनिक कार्य मुझे बतलाया जाए उसे अपनी शक्ति-भर पूरा करूँ और अपने बड़ों को अपने परिश्रम तथा सद्व्यवहार से हमेशा प्रसन्न रक्खूँ, क्योंकि वे ईश्वर के अनुचरों की हैसियत से मेरी ही भलाई के लिए मेरे ऊपर अधिकारी नियुक्त किए गए हैं और उन को प्रसन्न रख कर तथा उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर मैं, वास्तव में, ईश्वर की ही सेवा करूँगा।

इन सब बातों पर विचार कर अन्त में हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारा दो प्रकार का कर्तव्य—अर्थात् ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति हमारा कर्तव्य—वस्तुत: एक ही कर्तव्य है जिसको हम एक साधारण शब्द 'प्रेम' के द्वारा प्रकट कर सकते हैं। ईश्वर के प्रति प्रेम और मनुष्य के प्रति प्रेम—यही हमारा एकमात्र कर्तव्य है। यदि हमारे हृदय में प्रेम है तो शेष कर्तव्य अपने आप ही सिद्ध हो जाएगा। जिसके हृदय में ईश्वर का प्रेम है वह अवश्य ही अपने साथी मनुष्यों पर भी दया रक्खेगा। परन्तु ईश्वर का प्रेम उस समय तक होना कठिन है जब तक कि पहले हम अपने साथियों को प्रेम न करें। अपने मनुष्य-भाइयों को प्रेम करके ही अपने ईश्वर-पिता को प्रेम करना हमें सीखना चाहिए; क्योंकि यदि कोई अपने भाई को ही प्रेम नहीं करता, जिसे वह रात-दिन देखता है, तो वह ईश्वर को कैसे प्रेम कर सकता है जिसे उसने कभी देखा ही नहीं है। और, यही उस सुन्दर कविता 'अबू बिन अदम (Abou Ben Adhem)' का भी अभिप्राय है, जिसे शायद तुमने पढ़ा भी हो। उसी कविता के साथ मैं आज के व्याख्यान को समाप्त करता हूं।—

"Abou Ben Adhem (may his tribe increase)
Awoke one night from a deep dream of peace,
And saw within the moonlight in his room,
Making it rich, and like a lily in bloom,
An angel writing in a book of gold :—
Exceeding peace had made Ben Adhem bold,

And to the presence in the room he said,
'What writest thou ?'—The vision raised its head,
And, with a look made of all sweet accord,
Answered, 'The names of those who love the Lord'.
'And is mine one ?' said Abou. 'Nay, not so'.
Replied the angel. Abou spoke more low,
But cheerily still, and said, 'I pray thee, then,
Write me as one that loves his fellow-men.'
The angel wrote and vanished. The next night
It came again with a great wakening light,
And showed the names whom love of God had blessed,
And lo ! Ben Adhem's name led all the rest."

—*Leigh Hunt.*

५—सत्यता : शाब्दिक ।

सत्यता के हम तीन स्वरूप मान सकते हैं, शाब्दिक, व्यवहारिक और मानसिक। और मैं समझता हूँ इस त्रिधा सत्यता में से पहली ही—सच बोलना या 'शाब्दिक सत्यता'—हमारे वर्तमान सम्भाषण के लिए पर्याप्त होगी।

क्या हम सदैव वही बात कहते हैं जो सर्वथा सत्य है? मुझे

भय है कि हममें से अनेक अपनी सुविधा के लिए किसी अति क्षुद्र कारण से ही सत्य के स्थान में झूठ बोल देते हैं और हमें इस बात पर ध्यान भी नहीं होता कि ऐसा करने से हमारी आत्मा की क्या क्षति हुई है। क्योंकि प्रत्येक झूठ एक पके हुए जख्मकी भाँति है जिसका मवाद इधर उधर फैलकर हमारे नीरोग शरीर को सरोग बनाता रहता है—हमारी साधुवृत्ति को पाप में परिणत करता रहता है। ऐसे प्रत्येक जख्म से हम बुराई में अधिकाधिक प्रवृत्त होते जाते हैं और ईश्वर की संतान बनने योग्य नहीं रहते। परन्तु इसका क्या कारण है ?

'निश्चय ही' तुम कहोगे—क्योंकि इसी प्रकार मैंने एक बालक को कहते सुना है; यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह बात उसने अपने अन्तःकरण के विरुद्ध कही थी—"निश्चय ही, यदि झूठ बोलकर मैं अपनी भलाई के साथ साथ किसी दूसरे की कोई बुराई नहीं करता हूँ तो मुझे ऐसे झूठ बोलने का अधिकार है। यदि मैं दूसरों को हानि नहीं पहुंचाता तो क्या अपने को अपमान से बचाने के लिए झूठ बोलने का मुझे कोई हक़ नहीं ?" परन्तु मित्रो, इस प्रकार की दलील से तुमने अपने ही विनाश को सिद्ध किया है, क्योंकि ऐसा झूठ तुम्हारे मनुष्यत्व के सबसे उत्कृष्ट अङ्ग को नष्ट करता है; और जिस समय तुम बाहर से समृद्ध मालूम होते हो तुम भीतर ही भीतर नष्ट होते जाते हो। तुम जीते हो संसार के लिए, ईश्वर के लिए नहीं। क्योंकि, जैसा

मैं अभी कह चुका हूँ, प्रत्येक झूठ हमारी आत्मा का ज़ख्म है, जो उसकी हत्या करता है। और तुम समझे, आत्मा की हत्या से मेरा क्या अभिप्राय है? मेरा अभिप्राय है कि हमारा वह अंश जो ईश्वरीय है और जिसके द्वारा हम ईश्वर के संसर्ग का अनुभव कर सकते हैं इतना हीन और क्षतांकित हो जाता है कि वह अपने ईश्वरीय प्रतिबिम्ब को खो देता है और हम उसी से पृथक् हो जाते हैं जो हमारी आत्मा का जीवन है। सत्य ईश्वर की ज्योति है। सत्य से अलग होने पर हम ईश्वर से अलग हो जाते हैं और ईश्वर से अलग होकर हम उन तमाम बातों को खो देते हैं जो वास्तव में अमूल्य और अच्छी है और जिनका प्राप्त करना हमारे लिए परम आवश्यक है। अब तुम समझे होगे कि झूठ बोलना कितनी नीच बात है और धनप्राप्ति आदि सांसारिक उद्देश्यों के कारण इच्छापूर्वक ईश्वर से विच्छेद कर हम कितना तुच्छ विनिमय करते हैं। मैं इसी आधार पर सत्य की स्थापना करना चाहता था, क्योंकि मेरा विश्वास है कि यही सबसे दृढ़ और सच्चा आधार है। सत्य ईश्वर का स्वरूप है, ईश्वर ही सत्य है, और जितना ही हम सत्य से विमुख होते हैं उतना ही हम ईश्वर से नाता तोड़ते जाते हैं तथा उसकी ज्योति को अपने हृदय से निकालते हैं।

अतएव, जब हम अपने को ईश्वर की सन्तान कहने का दावा करते हैं तब हमारा कर्त्तव्य है कि हम सदैव सत्य बोलें। पूर्णतः

सत्यवादी होने पर ही हम उसके समीप रह सकते हैं जो परम सत्यमय है और जिसके पास झूठ की छाया तक नहीं आ सकती। मेरी समझ में, यदि सत्य को इस रूप में पहचानने लगोगे तो तुम उसका सबसे अधिक आदर करने लगोगे। वह जो सत्य को प्रेम करता है ईश्वर को प्रेम करता है; वह ईश्वर में रहता है और ईश्वर उसमें रहता है। झूठ बोलनेवाला ईश्वर को प्रेम कर ही नहीं सकता।

यह तो हुआ सत्य का ईश्वरीय पक्ष। अब उसका एक मानवीय या सामाजिक पक्ष भी है, जिसका सम्बन्ध हमारे पड़ोसियों से है। सब तत्त्वज्ञानी और नीतिवेत्ता इस बात को मानते हैं कि सत्य के बिना संसार का काम नहीं चल सकता और तमाम सामाजिक बन्धनों में जब तक हम अपने वचन का पालन नहीं करेंगे तबतक समाज का स्थिर रहना कठिन है। इसीलिये सभ्य देशों की सरकारों ने अपनी प्रजा को प्रतिज्ञापालक बनाने के लिए कुछ विशेष नियम बना रक्खे हैं और यदि कोई मनुष्य प्रकट रूप से की हुई अपनी प्रतिज्ञा को इच्छापूर्वक भंग करता है तो उसे प्रकट रूप से ही दण्ड दिया जाता है।

परन्तु क्या समाज के लिए यह भी कभी कल्याणकर हो सकता है कि हम असाधारण अवसरों पर किसी शुभ अभिप्राय से एकाध बार झूठ भी बोल दें? ऐसी दशा में, हमारे सदुद्देश्य के कारण झूठ, यदि सत्य नहीं तो, क्या अच्छा नहीं हो जाएगा?

परन्तु इनका एक ही उत्तर है झूठी बातें कभी अच्छी नहीं हो सकतीं क्योंकि वह ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल है। हर समय, हर दशा में, सत्य बोलना ही सर्वोत्तम है। चाहे हमें इसका परिणाम कभी बुरा भी दिखाई दे परन्तु हमको उसे ईश्वर के हाथों में सौंप देना चाहिए। सच्चा उपदेश यही है कि सत्य बोलो और पूर्ण सत्य बोलो। सत्य के सिवा और कुछ न बोलो।' ऐसा करने से हम ईश्वर के निकट रहेंगे और अपने साथियों को लाभ पहुंचा सकेंगे। यही एक मार्ग है जो इस भंगुर संसार में भी मनुष्य को प्रतिष्ठा के पद पर पहुँचाता है। पारसी कवि हाफ़िज़ ने कहा है—

"सत्य ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय है। यही सीधा मार्ग है। मैंने ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा जो सीधे मार्ग पर चलकर भटका हो।"

सत्य ही एक ऐसा मार्ग भी है जो हमें ऐहिक चिन्ताओं से मुक्त कर स्वर्गद्वार तक पहुँचा देगा, क्योंकि दुनियाँ की यद्यपि हरेक वस्तु नष्ट हो जाए परन्तु सत्य अनन्त काल तक नष्ट नहीं होगा।

६—सत्यता : व्यावहारिक ।

प्रत्येक न्यायाधीश, जो पदारूढ़ होकर रिश्वत के लोभ से झूठा निर्णय करता है, व्यावहारिक झूठ का—सबसे जघन्य झूठ का—अपराधी है। प्रत्येक अफ़सर जो एक विश्वास पाकर अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए, अथवा धनिकों पर अनुग्रह करने और निर्धनों को सताने में, अपने अधिकार का दुरुपयोग करता

है, अपने मुँह से कुछ न कहता हुआ और ऊपर से न्याय का ढोंग रचता हुआ भी उस मनुष्य की भाँति झूठा और धोखेबाज़ है जो जान बूझ कर उसी कुए में ज़हर घोलता है जिसकी रक्षा के लिए उसकी नियुक्ति हुई है; न्याय का धुरीण होने का दम भरता हुआ वह अन्याय की वृद्धि करता है; ईश्वर का सेवक बनता हुआ वह उसके विरुद्ध चलता है।

और मैं एक राजकर्मचारी को ईश्वर का प्रतिज्ञाबद्ध सेवक क्यों कहता हूँ? इसलिए कि संसार में प्रत्येक शक्ति, प्रत्येक शासन, ईश्वर का स्थापित किया हुआ है और वह उसके सामने अपनी प्रजा के लिए उत्तरदायी है। यही कारण है कि हम अपने राजा की आज्ञा मानने के लिए बाध्य हैं। मनु का आशय भी यही है कि राजशक्ति का सम्मान करना चाहिए क्योंकि राजा 'ईश्वर का अंश' होता है—उसमें अन्य मनुष्यों की अपेक्षा कोई वस्तु अधिक ईश्वरीय विद्यमान होती है। इसी प्रकार राजा के नीचे के अफ़सर मनुष्यों में ईश्वर का काम करने के लिए नियुक्त हुए हैं और यदि वे शान्ति और न्याय का पालन नहीं करते तो क्या वे अपने सबसे पवित्र कर्त्तव्य के स्थान में पाप नहीं करते? अतः सार्वजनिक कामों का भार ग्रहण कर जो लोग ईश्वर के इच्छा-नुसार नहीं चलते—चाहे वे बादशाह हों या और कोई—पक्के दग़ाबाज़ हैं। वे ईश्वर को और अपने भाइयों को ही धोखा नहीं देते बल्कि अपनी सज्जनता को भी धोखा देते हैं और ईश्वर उन्हें अधिक दिन तक नहीं रहने देगा। इसीलिए मनु भी कहते

हैं कि राजा का प्रथम गुण यह है कि 'वह सदा सच बोले, और यदि वह अपने कर्त्तव्य से पतित हो जायगा तो न्याय शीघ्र ही उसका कुल-सहित उन्मूलन कर डालेगा।' राजा की भाँति ही उसके सचिवों और निम्न पदाधिकारियों को शुद्धाचारी होना चाहिए क्योंकि वे भी उसके सामने उसके दिए हुए अधिकार के लिए उत्तरदायी हैं। इस प्रकार तुम देखते हो कि सार्वजनिक कार्यों में झूठ का व्यवहार दो तरह से बुरा है। प्रथम तो वह स्वयं ही पाप है और दूसरे वह मनुष्य को ईश्वर के सेवक के पद से पतित कर विश्वासघातक और समाजशत्रु की लज्जाजनक स्थिति को पहुँचा देता है। वैसे तो झूठ सब ही में निन्दनीय है परन्तु उस सेनापति को हम क्या कहेंगे जो ईश्वर की सेना में उच्च पद को प्राप्त कर शत्रु से जा मिलता है? वह पूरा पापी है। उसका हृदय काला है—और उसका दण्ड बस मृत्यु है। प्रत्येक बादशाह और प्रत्येक अफसर ऐसा ही पापी है जो ईश्वर के सौंपे हुए कार्य को निष्कपटता से नहीं करता।

सार्वजनिक कामों में इस सार्वजनिक कर्त्तव्य के विषय में कहने का साहस मैंने इसलिए किया है कि हममें से कितने ही ऊँची सरकारी नौकरियाँ पाने को धन जोड़ने और अपने कुटुम्ब की सांसारिक वृद्धि करने का एक श्रेष्ठ अवसर समझते हैं। मेरे मित्रों, ऐसे लोग ईश्वर से बहुत दूर हैं और जैसा मैं अपने पहले व्याख्यान में कह चुका हूँ, केवल ईश्वर की समुपस्थिति को हृदयंगम कर तथा अपने कर्त्तव्य का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करके

ही हम ऐसे नीच विचारों से मुक्त रह सकते हैं। केवल उसी समय हम उसके प्रेमपूर्ण ज्ञान तथा उसकी दया और न्याय का संदेश लोगों तक पहुँचा सकते हैं, जब हमारे हृदय स्वयं उसके आज्ञापालन के उत्साह से भरे हों और हमको उसकी अच्छाई में पूर्ण विश्वास हो। यदि तमाम सार्वजनिक कर्मचारी, तमाम बादशाह, तमाम शासक, अपने कर्त्तव्य का इसी तरह ध्यान रक्खें तो क्या 'ईश्वर के अंश' इस पृथिवी को भी स्वर्गराज्य के समान सुखमय नहीं बना सकेंगे ?

यह विचार हमारे लिए बिलकुल अर्थशून्य नहीं है, क्योंकि तुममें से कितनों ही को शायद किसी दिन शासन-भार सौंपा जाए या किसी उच्च पद पर पहुँच कर लोकसेवा करनी पड़े। परन्तु हमारा, प्रत्येक का, भविष्य कुछ भी क्यों न हो, सत्यधर्म सबके लिए समान है। अपने प्रत्येक काम में हम एक दूसरे के प्रति, और मुख्यत: ईश्वर के प्रति, सच्चे बनें; परन्तु सच्चे हम उस समय तक हो नहीं सकते जब तक हम उचित काम नहीं करेंगे क्योंकि अनुचित करते ही हम उसे छिपाने की कोशिश करेंगे और हम झूठे हो जायँगे। इसके अतिरिक्त, बिना ईश्वर की सहायता के, हम सत्य व्यवहार नहीं कर सकते, जिसका यह अर्थ है कि हमको सदा ईश्वर की समुपस्थिति का ध्यान रखना चाहिए।

यह, जो कि अपने स्वामी के सामने कर्त्तव्य-पालन की

दिखावट कर उसके पीछे उसकी इच्छा के प्रतिकूल करता है—जो विद्यालय में एक तरह का व्यवहार करता है और घर पर दूसरी तरह का—जो अपने शिक्षकों और अफसरों का आदर करता है परन्तु अपने साथियों के साथ असभ्यता और छिछोरेपन से पेश आता है, वह मनुष्य मिथ्या व्यवहार करता है और उसका जीवन मनुष्य और ईश्वर के सामने झूठ का जीवन है। वास्तव में, तुम अपने मित्रों के साथ वैसा व्यवहार नहीं करोगे जैसा तुम अपने शिक्षकों के साथ करते हो। मेरा यह अभिप्राय भी नहीं है, क्योंकि आपस में जिस प्रकार की बेतकल्लुफी से तुम रहते हो वैसे अपने गुरुजनों में नहीं रह सकते और ऐसा करना स्वाभाविक और उचित भी है। परन्तु यदि तुम अपने साथियों के बीच में कोई ऐसा कार्य करते हो जिसे तुम स्वयं बुरा समझते हो और जिसे तुम अपने बड़ों के सामने करते हुए डरते हो अथवा यदि लुकछिप कर कोई अन्य काम करते हो जिसे प्रकाश रूप से करने में तुम्हें लज्जा मालूम होती है, तो मैं कहता हूँ, तुम झूठ का व्यवहार करते हो। यदि मुझ से टहलने जाने की आज्ञा लेकर तुम बाजार के किसी ऐसे स्थान में जाते हो जहाँ जाने से मैंने तुमको मना किया है तो तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है—मिथ्या व्यवहार किया है।

मनुष्य को धोखा देना सहज है परन्तु ईश्वर को धोखा देना सम्भव नहीं। क्या हम समझते हैं कि झूठ बोल कर या झूठा व्यवहार कर हम कुछ प्राप्त कर लेंगे? ऐसा समझना स्वयं झूठ

है और उससे हम अपने को ही धोखा देते हैं शायद हम कुछ सांसारिक प्राप्ति कर लें। हम रिश्वत लेकर थोड़ा सा निकृष्ट धन जोड़ लें, परन्तु हम वह वस्तु खो देते हैं जो सबसे अधिक मूल्यवान् है, जिसका मूल्य कभी नहीं घटता। हम खो देते हैं ईश्वर के प्रेम को। हम खो देते हैं अपनी आत्मा के जीवन को।

७—सत्यता : मानसिक ।

शाब्दिक और व्यावहारिक सत्यता के साथ मानसिक सत्यता का स्वाभाविक सम्बन्ध है। यदि हमारे विचार शुद्ध और सच्चे हैं तो हमारे वचन और कर्म भी सच्चे ही होंगे। जो मनुष्य अपने विचारों में पूर्णरूप से सच्चा है वह अपने जीवन में भी पूर्ण रूप से सच्चा होगा और उसमें संसार के अन्य मनुष्यों की अपेक्षा

ईश्वरीय अंश बहुत अधिक होगा। मन, वाणी और कर्म के इस सम्बन्ध के कारण ही क़ानून भी किसी मनुष्य को उस काम के लिए अपराधी नहीं ठहराता जो इच्छापूर्वक न किया गया हो। यदि कोई बुद्धिभ्रष्ट मनुष्य किसी को गाली देता या ईश्वर की निन्दा करता है तो वह अपराधी नहीं है। इसी प्रकार कोई मनुष्य चैतन्यनाश होने पर अज्ञान से किसी को मार डाले तो उस पर हत्या का अभियोग नहीं लग सकता। सारांश यह है कि मन और हृदय से तमाम सत्य का उद्गम है। जो वाणी और कर्म में सच्चा होना चाहता है उसे प्रथम मन से सच्चा होने की आवश्यकता है।

अब मैं तुमसे उन मिथ्या विचारों की बात कहता हूँ जो वाणी या कर्म में कोई प्रत्यक्ष स्वरूप धारण न करके भी असार प्रतिमाओं तथा अनुदार शंकाओं की कल्पित सृष्टि से हमारे मन को व्यथित करते रहते हैं। ऐसे विचार अपने तथा अपने अतिनिकट निवासियों के विषय में बहुत ज्यादा सोचते रहने से उत्पन्न होते हैं। इसलिए वे स्वार्थपूर्ण हैं, सांसारिक हैं और ईश्वर से भिन्न हैं।

मैं तुम्हें अपना आशय समझाऊँगा। क्या तुमने कभी अपने पड़ोसियों पर अपने प्रति कोई इस प्रकार की बुरी भावना रखने का दोषारोपण नहीं किया है जो बाद में निर्मूल सिद्ध हुई हो; अथवा स्वार्थ-प्रेरित संदेह के कारण क्या तुमने कभी उनके विषय में कोई

बुरी कल्पना नहीं की है ? मानलो तुम्हारे दर्जे में किसी लड़के ने आशा से बढ़कर काम कर दिखाया और जिस समय तुम्हें आशा थी कि तुम उसे पीट सकोगे उसने तुम्हें पीट दिया। तब क्या तुमने उसके गौरव को घटाने के लिए अयुक्त उपायों को उसकी सफलता का कारण बताने की चेष्टा नहीं की ? मुझे तो भय है कि दूसरों के सम्बन्ध में ईर्ष्या के भावों को हम प्रायः अपने हृदय में स्थान दे देते हैं जो बाद में उतने ही मिथ्या प्रमाणित होते हैं जितने कि वे कठोर हैं। क्या ऐसी अवस्था में यह अच्छा नहीं होता कि हम अपने पड़ोसी के सम्बन्ध में अच्छी बातें सोचते और उसकी सफलता की सचाई पर विश्वास करते ? क्या इससे हमारे हृदय को शान्ति नहीं मिलती, या हमारी सत्यता को दृढ़ता ? हमें चाहिए कि हम सदा दूसरों के विषय में अच्छा ही सोचें और कभी उनके सम्बन्ध में बुरी कल्पना न करें, क्योंकि हम देखेंगे कि हमारे उदार विचार भी प्रायः सच्चे निकलते हैं। यह हमारे धर्म का—प्रेम-धर्म का—एक अंश है; और प्रेम के विषय में यह सत्य ही कहा गया है कि वह बुराई को छिपाता है, भलाई पर विश्वास करता है, शुभ की आशा करता है और विपर्यय को सहन करता है।

यही बात दूसरे सन्देहों की भी है। तुम शायद समझते हो कि तुम्हारे शिक्षक ने तुम्हारे साथ न्याय-व्यवहार नहीं किया और वह तुमसे शत्रुता रखता है, क्योंकि तुमने अच्छा काम करने का यथाशक्ति प्रयत्न नहीं किया है। और यह विचार धीरे धीरे

तुम्हारे हृदय में पुष्ट होता रहता है और तुमको चिन्ताकुल करता है। परन्तु बहुत सम्भव है कि इस में सत्य का लेश भी न हो। शायद तुम्हारे शिक्षक ने उचित ही किया है और अपने कर्त्तव्य-पालन के समय शायद उसे तुम्हारा ध्यान तक नहीं था। शायद वह तुम्हारे साथ भी वैसा ही न्यायपरायण रहा है जैसा कि अन्य विद्यार्थियों के साथ, और तुम्हारे झूठे सन्देह के कारण केवल तुम्हारे ईर्ष्यापूर्ण विचार ही हों। यह भी सम्भव है कि इन सन्देहों का कारण शायद तुम्हारी अपनी त्रुटियाँ ही हों, क्योंकि सन्देह कर्त्तव्य-लंघन का स्वाभाविक परिणाम है।

हम अपने विषय में अधिकतर अच्छी बातें सोचते हैं और अपने पड़ोसियों के विषय में बुरी। परन्तु उचित यह है कि अपने विषय में कुछ न सोच कर पड़ोसियों के विषय में हम अच्छी ही बातें सोचें। अपने को हमें ईश्वरको सौंप देना चाहिए; और वह हमारी देखभाल करेगा। यदि हम उसका ध्यान रखगे तो हमें अपने विषय में सोचने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

इसी सम्बन्ध में मुझे एक बात और कहनी है। इस प्रकार के झूठे सन्देहों से ही उन प्रवादात्मक बातों की उत्पत्ति होती है जिन्हें हम लोग प्रायः अपने प्रत्येक परिचित मनुष्य के सम्बन्धमें कहते रहते हैं। तुम लोग शायद ऐसी बातों को 'गप' के नाम से पुकारते हो। यदि हम किसी मरते हुए मनुष्य के विषय में सुनते हैं तो प्रायः हमारे दिल में विष दिए जाने का सन्देह उत्पन्न होता

है। किसी धनिक मनुष्य को देख कर हम सोचते हैं कि उसने शायद अपना धनसञ्चय अनुचित उपायों द्वारा किया है। किसी मकान में आग लग जाने पर हमको गृहस्वामी के शत्रु द्वारा ही अग्नि-प्रयोग किए जाने की सूचनाएँ प्राय: मिलती हैं। परन्तु फिर भी सम्भव है कि इन सब बातों का कारण सामान्य घटना-क्रम ही हो—मृत्यु स्वाभाविक हुई हो, धनिक ने शुद्धाचार से धनोपार्जन किया हो, आग घटनावश लगी हो। इन झूठे अपवादों के कारण हमारे अनुदार और मिथ्या विचार तथा हमारे मन की क्षुब्ध और संदेहात्मक अवस्था ही हैं; और यदि हमने कभी ऐसे विचारों को अपने हृदय में स्थान दिया है अथवा किसी की बुराई सुनकर उसे फैलाने का प्रयत्न किया है तो हम तीनों प्रकार के झूठ के अपराधी हैं।

अत: मैं कहता हूँ कि हमें कभी बुरी बात नहीं सोचनी चाहिए। हमें केवल अपने कर्त्तव्य के, और आज ही के कर्त्तव्य के, विषय में सोचना चाहिए। यदि हम आज ही के लिए सोचेंगे तो हमारा मन पूर्व कल्पनाओं से क्षुब्ध नहीं होगा जो हमें सत्य और ईश्वर से दूर हटाती हैं। हमको केवल ईश्वर ही की आवाज़ सुननी चाहिए, दुनिया की नहीं। ईश्वर की आवाज़ हमारे अन्त:करण द्वारा हमसे कहती है, "मुझसे प्रेम करो और अपने पड़ोसियों से प्रेम करो। फिर तुम्हारा जीवन संसार के अशान्तिपूर्ण तूफ़ानों के बीच में परम शान्तिमय हो जाएगा।"

यही वास्तविक 'संसार-त्याग' है, अर्थात् दुनियाँ में रहते हुए भी अपने विचारों को उसकी बुराइयों से शुद्ध रखना। वह, जो बुरा नहीं सोचता अपने हाथों को साफ़ और हृदय को शुद्ध रखता है और इस जीवन के उलटफेर में कभी धोखा नहीं खाता। उसका मन ईश्वर का मन होता है और उसी से वह सोचता है।

८—हमारा कालिज* ।

मनुष्य को अकेले रहना उचित नहीं, क्योंकि उसका जीवन सामाजिक जीवन है। हमारा सामाजिक जीवन, अपने प्रियजनों की मित्रता और अपने पूज्य पुरुषों की संगति आदि ही ऐसी

---

* स्कूलों के विद्यार्थी 'कालिज' के स्थान में 'स्कूल' शब्द रख सकते हैं।

यही वास्तविक 'संसार-त्याग' है, अर्थात् दुनियाँ में रहते हुए भी अपने विचारों को उसकी बुराइयों से शुद्ध रखना। वह, जो बुरा नहीं सोचता अपने हाथों को साफ़ और हृदय को शुद्ध रखता है और इस जीवन के उलटफेर में कभी धोखा नहीं खाता। उसका मन ईश्वर का मन होता है और उसी से वह सोचता है।

८—हमारा कालिज* ।

मनुष्य को अकेले रहना उचित नहीं, क्योंकि उसका जीवन सामाजिक जीवन है । हमारा सामाजिक जीवन, अपने प्रियजनों की मित्रता और अपने पूज्य पुरुषों की संगति आदि ही ऐसी

---

* स्कूलों के विद्यार्थी 'कालिज' के स्थान में 'स्कूल' शब्द रख सकते हैं ।

बातें हैं जिनसे हमारा जीवन सुखमय बनता है। परन्तु हमारे जीवन का यह प्रधान सुख इतना सामान्य होता है कि उसका प्रत्यक्षीकरण तो दूर रहा, हमको कभी उसका ध्यान तक नहीं होता। शायद वे लोग ही उसका पूर्ण अनुभव कर सकते हैं जिनको दुर्भाग्य से कभी एकान्तवास में अपना समय व्यतीत करना पड़ा हो।

जनसमाज के कितने ही प्रकार हैं। इनमें से एक गृहसमाज है, जहाँ कुटुम्ब के सब लोग मिल कर रहते हैं, और हम जानते हैं कि वह कितना सुखमय होता है। इसके बाद स्कूल या कालिज का समाज, विश्वविद्यालय का समाज, सैन्यसमाज, साहित्यज्ञों या वैज्ञानिकों का समाज, ग्रामीण समाज आदि कितने ही समाजों की गणना हो सकती है। इन सब भिन्न भिन्न समाजों में मनुष्य पारस्परिक सहायता और सुख के लिए एक दूसरे से मिलते हैं और उनका सुख मनुष्य का वह श्रेष्ठ अधिकार होता है जिसके बिना जीवन जीवन ही न रहता।

परन्तु प्रत्येक अधिकार के अनुरूप कुछ न कुछ कर्त्तव्य भी

नोट—मैकनाटन साहब का यह व्याख्यान बड़ा उपयोगी है। विद्यार्थियों के साथ साथ आजकल शिक्षकों में भी प्रायः बहुत से दूषण आगए हैं। यदि हमारे शिक्षक मैकनाटन के आदर्श पर चलें और विद्यार्थी उनके उपदेशों का पालन करें तो सचमुच देश का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। —अनुवादक

होते हैं, और समाज-सुख के अधिकार को प्राप्त करने के लिए समाज के प्रत्येक सदस्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने साथी सदस्यों की भलाई का ध्यान रक्खे—उसका जीवन व्यक्तिगत जीवन न हो, बल्कि सामाजिक जीवन हो। ऐसा करने में उसे अनुभव होगा कि एक दूसरे पर हम कितने निर्भर हैं और, वास्तव में, दूसरों के सुख का ध्यान रख कर हम अपने ही सुख का उपाय करते हैं।

आज मैं अपने कालिज के समाज के तथा इससे होनेवाले लाभों के विषय में कहना चाहता हूँ। मैं उन कर्तव्यों के विषय में भी कहूँगा जो हमको ऐसे समाज में एक दूसरे के प्रति करने चाहिएँ। मुझे आशा है कि ये विचार वर्षारम्भ के इस समय हमारे लिए विशेष उपयोगी होंगे, जब कि हम अपनी पिछली बुराइयों को सुधारने का पूरा प्रयत्न कर सकते हैं और अपने अवसरों का पूर्ण लाभ उठाते हुए अपने कालिज को आदर्श कालिज बना कर उसे अच्छी बातों का निवास बना सकते हैं।

अब देखना चाहिए कि कालिज में रहकर हम पारस्परिक समागम से क्या क्या लाभ उठाते हैं। इन लाभों का हम अपने ही हाथों निर्माण करते हैं और यदि मैं कहूँ कि अपने शुद्ध व्यवहार से तथा एक दूसरे के एवं ईश्वर के प्रति सदा अपना कर्त्तव्य-पालन करने से हम अपने कालिज को संसार भर का सर्वश्रेष्ठ कालिज बना सकते हैं तो शायद मैं अत्युक्ति का दोषी नहीं हूँ। क्योंकि जरा सोचो, यहाँ हमको कैसे कैसे अवसर प्राप्त

हैं। हम यहाँ अपने जीवन के एक ऐसे समय में एकत्रित हुए हैं जब कि हम सब तरह की चिन्ताओं से मुक्त हैं। हमारी नस नस में नवजीवन का उत्साह भरा हुआ है, हमारे सुस्वास्थ्य का ध्यान हमको सुखातिरेक से पूरित कर देता है, और हमारी प्रत्येक हरकत और चेष्टायें आनन्द का स्वरूप होती हैं। मुख्यत: वह जो तुमसें जरा अधिक बड़े हैं, इस समय अपने अक्षत यौवन के उस श्रेष्ठ अवसर को प्राप्त हैं जब जीवनकुसुम खिलकर अत्यन्त सुन्दर और अभिनव मालूम होता है और मनुष्य का हृदय, उसकी आत्मा और इन्द्रियाँ, एक अनवरत सुख का अनुभव करती हैं।

सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति तथा शारीरिक स्वास्थ्य का पूर्ण सुख—यही दो बातें ऐसी हैं जो हमारे वर्तमान जीवन को यदि सर्वश्रेष्ठ नहीं तो सर्वरुचिर अवश्य बना देती हैं। तुम्हें इनके लिए ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए और इन्हें उसके परमपवित्र उपहार समझने चाहिएँ। और जिस समय यौवनसुलभ उत्साह के कारण तुम्हारा चित्त प्रफुल हो, तुमको याद रखना चाहिए कि जिस प्रकार इस उल्लास और प्रमोद का उद्गम तुम्हारे शरीर से है उसी प्रकार वे शरीर द्वारा ही नष्ट भी हो सकते हैं तथा उसी प्रकार तुम अपने शारीरिक स्वास्थ्य और बल को, जो ईश्वर का पवित्र उपहार है, अपनी मूर्खता या पाप द्वारा खो सकते हो। इसलिए, मित्रों, अपने शरीर और स्वास्थ्य का सदैव ध्यान रखो क्योंकि यह पवित्र

चीजें तुमको ईश्वर की सेवा करने के लिए दी गई हैं; और मेरी तुमसे प्रार्थना है कि अपनी स्वार्थपूर्ण तथा पापमय कामनाओं से उनकी सदैव रक्षा करो। ये कामनाएँ तुम्हारे शरीर ही को नहीं बल्कि उस अजर और अमर आत्मा तक को दूषित और मलिन बनाती हैं।

इसके अतिरिक्त तुम यहाँ अपने बराबरवालों की संगति में हो, जिनके साथ तुम दुनिया भर के विषयों पर पूर्ण स्वातंत्र्य से वार्त्तालाप कर सकते हो। जिन लोगों के विचार तुम्हारे ही जैसे हैं—जिन के कर्मों में तुम अपने कर्मों का आभास देखते हो—उनके साथ सहयोग-सुख का तुम्हारे लिए पूर्ण अवसर है। हमारे जैसे समाज में शुद्ध और नवीन हृदयों के सरल समागम से जो मित्रता उत्पन्न होती है वह बड़ी सुखप्रद है। ऐसी मित्रता निष्काम होती है और उसमें कोई स्वार्थ नहीं रहता। वह हमारी आजकल की मित्रताओं की तरह नहीं होती जो ज़रा देर में बनती और बिगड़ती है। अतः हम प्रायः देखते हैं कि स्कूल में लड़कों के सद्गुणों का आदर होता है—उनकी धनदौलत, जन्म या वंश का नहीं। जो वास्तव में सच्चा और अच्छा होता है उसका सदैव कालिज में सम्मान होता है तथा जो घृणायोग्य होता है उससे घृणा की जाती है। तुम, जो कालिज के जीवन से भली भांति परिचित हो, मुझे आशा है, मेरे कथन से सहमत होगे। और यह, वास्तव में, बड़ी अच्छी बात है कि अपने जैसे

समाज में हम पक्षपातरहित होकर अपने साथियों के सद्गुणों का ही आदर करें। हमको अपने इस छोटे से स्कूल के गुरुत्व को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये क्योंकि संसार-रूपी बड़े स्कूल में दाखिल होने पर हमको इसके से अवसर प्राप्त न हो सकेंगे।

इसके अनन्तर तुम्हें अपने गुरुओं के सहवास का अपूर्व अवसर प्राप्त है, जो तुमसे अधिक विद्वान और अनुभवी हैं और जिनका एकान्त लक्ष्य तुम्हारी भलाई ही है। कुछ लड़के स्कूल को प्राय: एक कारागार सा समझते हैं जहाँ उनसे कठिन परिश्रम कराया जाता है और जहाँ के अनुशासन और दण्ड उनके जीवन-सुख में बाधा डालते हैं। परन्तु तुम याद रखो कि तुम्हारे गुरुओं को तुम्हारी उन्नति के अतिरिक्त और किसी बात का ध्यान नहीं है और उनको तुम्हारे कष्टों और त्रुटियों को देखकर कष्ट और सुख को देख कर सुख होता है। जो कुछ भी यहाँ किया जाता है तुम्हारी ही भलाई के लिए किया जाता है। हम लोग तुमको सुखी और अच्छा बनाने की ही कोशिश में निरत रहते हैं। हम जानते हैं कि ज्ञान और बुद्धि से ही मनुष्य सच्छील और सुखी हो सकता है। इनके बिना ऊँची स्थिति के लोग सफल नहीं हो सकते। इसीलिए हम तुमको ज्ञान और बुद्धि की शिक्षा देते हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि कोई शिक्षा रीति और नियम के बिना नहीं दी जा सकती, इसलिए हम अपने दैनिक कर्त्तव्यों का अलग अलग विभाग करते हैं, जिससे

मानसिक शिक्षा के साथ साथ तुम्हारी शारीरिक शिक्षा भी हो सके।

सम्भव है, ये बातें तुमको कष्टप्रद मालूम हों परन्तु वे वास्तव में ऐसी नहीं हैं। यही हम तुम्हें दे सकते हैं, और यह समझते हुए कि वह तुम्हारे लिए सर्वोत्तम है हम उन्हें तुमको देते हैं। मैं यह नहीं कहता कि वे पूर्णतः मनोहर हैं, परन्तु, फिर, संसार में कोई काम ऐसा नहीं है जिसमें कुछ न कुछ कष्ट न उठाना पड़ता हो। और, वास्तव में, बिना थोड़े बहुत कष्ट और परिश्रम के, हम सच्चा सुख भी नहीं प्राप्त कर सकते और न हमारा जीवन यथार्थ जीवन हो सकता है। चाहे कोई मनुष्य हल जोतनेवाला किसान हो या राजा, परिश्रम का जीवन ही उसके लिये सर्वोत्तम जीवन है और उसी में वह सुखी हो सकता है। क्योंकि हम सब ईश्वर के नौकर हैं जिसने हमें किसी न किसी काम के लिए यहाँ भेजा है। सौभाग्य से तुम इस कालिज में हो, जहाँ तुम्हारा काम बहुत ही सुखकर है; क्योंकि यहाँ तुम बाह्य संसार के संशयों से मुक्त हो और अपने योग्य साथियों और हितकाम गुरुओं के सहवास में शान्त मन से अपना कर्त्तव्य-पालन करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हो। ईश्वर को धन्यवाद दो जिसने तुम्हें ऐसे समाज में भेजा है। जहाँ तक हो सके, अपने अवसरों का पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न करो।

ये तो रहे तुम्हारे विशेष अधिकार। अब अपने कर्त्तव्यों की

बात सुनो। तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि अपने समाज की प्रतिष्ठा के लिये तुम भी जिम्मेदार हो। अपने कालिज को श्रेष्ठ बनाने के लिए, यहाँ की मित्रताओं का सुखोपभोग करने के लिए तथा सबको सुखी और उपयोगी बनाने के लिए तुमको पहले स्वयं अच्छा बनना चाहिए। तुम में से प्रत्येक को इस तरह रहना चाहिए कि जब तुम कालिज छोड़ो तब तुमको अपना समय नष्ट करने, कोई दुष्कर्म करने या कभी कोई बुरा वचन कहने के लिये पछताना न पड़े। प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्त्तव्य-पालन कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उससे उसके साथियों और गुरुओं का जीवन सुखी हो सके।

केवल एक शब्द ऐसा है जो अन्य सब बातों की अपेक्षा हमारे लिये अधिक सहायक होगा। वह शब्द है "प्रेम"। प्रेम ही से हमारा आदि-समाज, अर्थात् गृह, सुखमय और उज्ज्वल बनता है और प्रेम ही से हम अपने कालिज-समाज को भी सफल बना सकते हैं। अतः आज इस नए वर्ष के आरम्भ में तुम लोग प्रेम के साथ काम करने की प्रतिज्ञा करो। तुम लोग सदा अपने साथियों के साथ प्रेम रक्खो और अपने गुरुजनों का आदर करो। हम सब ईश्वर के बड़े कुटुम्ब में शामिल हैं; इसलिए एक दूसरे को प्रेम करना हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि वह हम सबको प्रेम करता है। जैसा मैं पहले कभी कह चुका हूँ, अपने पड़ोसी को प्रेम करके ही हम ईश्वर को प्रेम करना सीख सकते हैं। और

यदि हम उसे प्रेम कर सकें, जैसा कि वह हमें प्रेम करता है, और सदैव उसे अपने ध्यान में रख सकें, तो हमारा यह कालिज इस पृथ्वी पर एक छोटा सा स्वर्ग हो जाएगा; क्योंकि जहाँ ईश्वर है वहीं स्वर्ग है।

९—सज्जनता।

यदि हम भिन्न-भिन्न शब्दों के अर्थों पर ध्यान दें तो हम अनुभव करेंगे कि किस प्रकार मनुष्य-जाति ने अपने सामान्य गुणों के अनुरूप ही उनकी रचना की है, और हमारा यह अनुभव सुखकर होगा। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी में एक शब्द human है, जिसका अर्थ 'मानवीय' होता है, परन्तु दूसरे ही शब्द humane

से, जो आरम्भ में human का समानार्थी था, अब 'सदय' 'सानुकम्प' आदि अर्थों का बोध होता है। इसका कारण यह है कि वे लोग जो इन शब्दों का प्रयोग करते हैं स्वत: ही इस परिणाम को पहुँचते हैं कि 'मनुष्य' कहलाने वाले प्रत्येक प्राणी का यह धर्म है कि वह सदय और सानुकम्प हो। इसी प्रकार inhuman शब्द का अर्थ होता है 'निर्दय', 'निरनुकम्प', 'कठोर'।

मैंने इस अनुभव को सुखकर कहा है। कारण कि हम इस शब्द-रचना पर विश्वास कर सकते हैं। शब्दों का निर्माण ज़रा सी देर में, अथवा बिना सोचविचार के, अकारण ही नहीं हो गया था। इसके विपरीत वे कितनी ही पीढ़ियों के विचार-विकास का सुपपन्न परिणाम है। तुम खूब जानते हो कि शब्द उच्चारित विचारों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। वे हमारे परम बुद्धिमान् पूर्वजों के मानस के, जो हमारी ही तरह मनुष्य (human) थे और —हमारा विश्वास है—दयाशील (humane) भी थे, हमारे लिए छोड़े हुए उत्तरदान हैं। Generous, Gentle भी उपर्युक्त प्रकार के ही दो शब्द हैं जिनकी उत्पत्ति *genus* या gens शब्द से है। आरम्भ में इनका अर्थ था 'अच्छी पैदाइशवाला' या 'अच्छे कुल वाला'। परन्तु अब लोगों के अनुभव ने निश्चय किया है कि अच्छे कुलवाले लोग प्राय: उदार होते हैं और इसलिए अब 'generous' शब्द का अर्थ 'उदारहृदय' हो गया

है। इसी प्रकार अनुभव से यह भी पता चला है कि कुलीन लोग अकसर सहृदय, दयाशील और सज्जन होते हैं; अतएव, gentle शब्द का अर्थ 'सदय', 'सज्जन', 'अनपकारी' हो गया। हम प्रत्येक शब्द की उत्पत्ति और उसके प्रधान अभिप्राय को भले ही न समझ सकें; परन्तु यदि हम उसके जानने का प्रयत्न करेंगे तो वह अति मनोरञ्जक होगा; क्योंकि वह मनुष्य-जाति का, उसके अनुभव तथा उसके मानसिक विकास का, वास्तविक इतिहास है।

आज मैं सज्जनता के विषय में तुमसे कहनेवाला हूँ। तुमको सोचना चाहिए कि सज्जन किसे कहते हैं। किसी सज्जन को देखते ही हम उसे पहचान लेते हैं, परन्तु मैं नहीं कह सकता कि हम सब उन गुणों को भी जानते हैं या नहीं जो एक सज्जन में होने चाहिएँ। शायद यह बात इतनी सीधी और स्वाभाविक, तथापि इतनी पेचीदा और परिष्कृत है, कि हमने कभी इस पर सोचने का ध्यान ही नहीं किया है।

हाँ तो, हम सब एक सज्जन को देखते ही पहचान लेते हैं। परन्तु तो भी हम कभी-कभी ऐसे मनुष्यों को भी 'सज्जन' की उपाधि दे देते हैं जो उसके सर्वथा अयोग्य हैं; अथवा, कभी उन लोगों को जो वास्तव में सज्जन हैं हम इस नाम से पुकारते तक नहीं। अतएव, यह जानना चाहिए कि कौन लोग सज्जन कहलाने योग्य हैं और कौन नहीं।

पहली बात यह है कि हमको यह न समझना चाहिए कि

धनवान अथवा ऊँची स्थिति वाले लोग ही सज्जन हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह गरीब हो या धनी, गुलाम हो या बादशाह, सज्जन हो सकता है। डीन स्टेनली ने कहा है, "किसी रेलवे स्टेशन के द्वार-रक्षक के मृदुवचन में क्या कुछ प्रभाव नहीं है? क्या किसी गली के कोने में खड़ा हुआ एक पुलिस का सिपाही लोगों के सुख और आनन्द में वृद्धि नहीं कर सकता? असल बात यह है कि सज्जनता के इन छोटे-छोटे कामों से ही हमारे जीवन के अधिकांश कर्त्तव्य एक अभिनव आनन्द का स्वरूप धारण कर लेते हैं।" एक ड्योढ़ीवान या पुलिस का सिपाही भी सज्जन हो सकता है और इसी प्रकार तुम्हारा तुच्छ से तुच्छ नौकर भी। यही कवि बर्न्स का भी अभिप्राय है। उसने कहा है:—

"एक शुद्धवृत्ति मनुष्य, अति दरिद्र होने पर भी, वास्तव में मनुष्यों का राजा है।"

अतएव एक सज्जन पुरुष की व्याख्या हम इस प्रकार कर सकते हैं:—जो दूसरों की भलाई चाहता है, अपने स्वार्थ में रत नहीं रहता, जो दूसरों के जीवन को सुखद बनाने के लिए उनके साथ दया, नम्रता और सहानुभूति का व्यवहार करता है, जो मन-वाणी-कर्म में विनीत है तथा आत्मानुयायी है और जो अपने साथियों के हित के लिए अपने को बलिदान करने के लिए तैयार रहता है; अर्थात् जो मनुष्य निःस्वार्थ स्वभावसम्पन्न और हृदय

का उदार है वही सच्चा सज्जन है। साथ ही, जो मनुष्य अपने स्वार्थ को त्यागकर परोपकार ही में लगा रहता है वह स्वभावतः ही उदारहृदय और शिष्ट होगा। इस प्रकार एक कृषक, जो अपने साथियों के आराम और हित के लिए अपने सुख और आराम को त्याग देता है, परम निर्धन और अशिक्षित होने पर भी, हृदय से सज्जन है। वह अपने को तथा अपनी ग्रामीण झोंपड़ी को प्रतिष्ठा के एक नवीन पद पर उन्नत कर देता है।

यदि ग्राम्य जीवन में ये बातें पाई जा सकती हैं तो वह ऊँचे घरानों में, जहाँ की निर्वृत्ति और स्वतन्त्रता, शिक्षा और शिष्टता उनके चरित्र-सङ्गठन में विशेष सहायक होती हैं, और भी अधिक पाई जानी चाहिएँ। जिन लोगों की प्रत्येक हरकत में, प्रत्येक दृष्टिपात में, प्रत्येक शब्द में, प्रत्येक आकृति में, यहाँ तक कि वस्त्रों तक में शिष्टता भरी हुई है, उन्हीं लोगों से सज्जनता की सबसे अधिक आशा की जा सकती है; क्योंकि उनका प्रत्येक व्यापार अनुगुण है, सुखद है और सौम्य है।

जो किसान प्रातः से सायं तक खेत में परिश्रम करता है उसे इस प्रकार की मानसिक तथा व्यावहारिक उपपत्ति को प्राप्त करने का अवकाश नहीं मिल सकता। और न वही लोग जिन्हें रात-दिन अपनी रोटी के लिए जान लड़ानी पड़ती है, अपने पड़ोसियों का अधिक ध्यान रख सकते हैं। दरिद्रता की यदि

सब से बड़ी मार है तो यह है कि वह मनुष्य को अपने व्यक्तित्व से परे देखने का बहुत ही कम अवसर देती है।

परन्तु एक ऊँचे और प्रतिष्ठित घराने की बात दूसरी है। वहाँ कौटुम्बिक स्नेह तथा हृदय के उच्च भाव पूर्णरूप से सन्निविष्ट होते हैं, जीवन-संग्राम के स्वार्थपूर्ण दृश्यों का वहाँ नाम तक नहीं होता। सद्भावों के मनन तथा सत्पुरुषों के समागम का वहाँ पूर्ण अवसर रहता है और वहाँ मानव प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट अंग का दर्शन होता है। एक प्रसिद्ध लेखक का कथन है कि "वहाँ वे लोग होते हैं जिन्हें बचपन से ही मनुष्यता के उज्ज्वल भाग को देखते रहने का सौभाग्य प्राप्त है तथा जिनके चारों तरफ़ सदैव हँसते हुए और प्रफुल्ल चेहरे घूमते हैं, जिनकी मुखाकृति के परिवर्त्तन में प्रबल और शुद्ध भावों का, जो उनकी दृढ़ परन्तु कोमल प्रकृति के सूचक हैं, चित्रांकन होता है और जिनकी प्रकृति बाहर से देखी जाने पर सच्ची महानुभूति से देदीप्यमान रहती है तथा भीतर से मधुर शालीनता का उज्ज्वल आकर होती है। उन्होंने जीवन में अनेक बार ऐसी घटनाएँ देखी हैं जब कि मनुष्य अपने को बिलकुल भूलकर सच्चे हृदय से दूसरे के दुःख पर दुःखी होता है और स्वतः प्रवाहित उदारता से प्रेरित होकर आत्म-तिरस्कार के साथ वास्तविक आत्मत्याग करने को उद्यत होता है। कितनी ही बार उनका हृदय दूसरे की भलाई के लिए इस त्याग को देखकर ईश्वरीय ज्योति से जगमगा उठा होगा। कुलीन और प्रतिष्ठित घरानों में मनुष्यता का जोश ताजा होता है

और अवसर पाते ही वह एक तेजोमयी प्रखर ज्वाला का स्वरूप धारण कर लेता है। उनकी समस्त मानसिक वृत्तियाँ समुन्नत होती हैं और उनका समस्त व्यक्तित्व उस समाज की गरिमा से परिपूर्ण होता है जिसमें वे चलते फिरते हैं।

मित्रों, यह एक ऐसे कुटुम्ब का चित्रण है जिसमें सच्चे सज्जनों की अधिक आशा की जा सकती है। जिसे अपने लिए उद्यम करने की आवश्यकता नहीं पड़ी वह उसे करना भी नहीं चाहेगा। और सम्भव है वह बिलकुल लोकसेवा के लिए ही अपने को लगादे—दूसरे लोगों के आत्मबलिदान के महत्त्व को देखकर स्वयं भी उसके लिए तैयार हो जाए। वह उन बातों को करने के अधिक योग्य है जो दूसरों के जीवन को सुखमय बना सकती हैं।

तब क्या, मित्रों ! तुम्हारे घर भी इसी तरह के नहीं होने चाहिएँ ? क्या तुम्हें उन सुविधाओं का ध्यान है जो ईश्वर ने तुम्हें दी हैं ? क्या तुम सज्जन की तरह रहने के इच्छुक हो ? क्या तुम्हें दूसरों की भलाई और उनके साथ सद्व्यवहार करने का ध्यान रहता है ? तुम कभी स्वार्थपूर्ण कामनाओं के वशीभूत तो नहीं होते और क्या तुम संसार के सर्वश्रेष्ठ सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करने की महत्त्वाकांक्षा रखते हो ? क्या तुम अपनी भारी से भारी विपत्ति के समय भी महाराणा प्रताप का सा आचरण करने को तैयार हो जिन्होंने, जैसा कि उनके शत्रु अकबर

ने ही कहा है, 'राज्य और सम्पत्ति तक को खो दिया परन्तु कभी सिर नहीं झुकाया', जिन्होंने अपकीर्त्ति और परिभव के स्थान में दरिद्रता को ही पसन्द किया और जिन्होंने कठिन से कठिन परीक्षा के समय भी सच्चे वीर और सज्जन के जैसे आचरण को न छोड़ा। ज़रा जेडरोसिया के मैदान में प्यास से छटपटाते हुए सिकन्दर की याद करो जिसने नौकर से लाये हुए पानी को केवल इस कारण से पृथ्वी पर पटक दिया कि वह उसकी और उनके सैनिकों की प्यास बुझाने के लिए पर्याप्त न था। तुम्हें सर फिलिप सिडनी की बात याद है या नहीं, जिन्होंने जटफेन के मैदान में सांघातिक प्रहार खाकर भी अपना पानी एक मरते हुए सैनिक को यह कहकर दे दिया कि 'तुम्हारी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से अधिक है'। यही लोग सच्चे सज्जन थे,—तुम्ही बताओ, क्या वे नहीं थे ?

श्रीमती युइंग की एक कहानी 'जैकनेप्स' है। इसे तुम सब पढ़ना। उसमें लिखा है कि किस प्रकार युवा सैनिक जैकनेप्स ने अपने एक ज़ख़्मी मित्र को गोलियों की भीषण वर्षा में घुस कर बचाया और उसकी रक्षा करते हुए अपने प्राण दिये। वह भी सच्चा सज्जन था, क्योंकि दूसरों के लिये जीना और दूसरों ही के लिए मरना सदा से यथार्थ सज्जन का सच्चा गुण माना गया है।

दूसरों के लिए जीना और उन्हें प्रेम करना:—मेरी समझ में

वही लोग इस काम को कर सकते हैं जो ईश्वर के निकट रहते हैं। ईश्वरीय ज्योति और ईश्वरीय प्रेम पाकर ही मनुष्य वास्तविक सज्जन हो सकता है। यदि हम ईश्वर को प्रेम करते हैं–यदि ईश्वर हमारे हृदय में निवास करता है–तो हम अपने भाइयों को भी प्रेम करेंगे। यही हमारा उत्कृष्ट जीवन है; यद्यपि अर्थशास्त्र की पुस्तकों में तुम्हें इसका जिक्र नहीं मिलेगा, क्योंकि अर्थशास्त्रज्ञ इसकी गणना जातीय सम्पत्ति में नहीं करते। परन्तु संसार में ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके उपयोग और लाभ की कल्पना हम अपने पार्थिव उपयोग और लाभ की कल्पना द्वारा नहीं कर सकते, अर्थात् प्रेम प्रतिष्ठा, आत्मा, जो किसी मूल्य में नहीं खरीदी जा सकतीं और मृत्यु के साथ जिनका अन्त नहीं होता। परन्तु हम अपने ऐहिक जीवन के बाद भी जीवित रहना चाहते हैं; अतः हमें इन बातों को न भूलना चाहिए।

सुख सदा नहीं रहता। संसार में कष्ट भी हैं जो क्रमानुसार हम सबको भोगने पड़ते हैं। परन्तु हम अपने इच्छानुरूप सौम्य और उदार हो सकते हैं। हम दूसरों के जीवन को सुखमय बना सकते हैं। संक्षेप में, हम ईश्वर की सहायता पाकर सज्जन बन सकते हैं।

९

१०—छोटे कार्यों का महत्त्व ।

"The trivial round, the common task
Will furnish all we ought to ask,
Room to deny ourselves a road,
To lead us daily nearer God."

। केबिल की उपरिलिखित पंक्तियाँ हमको छोटे कार्यों

के महत्त्व के विषय में बतलाती हैं। Trivial round और common task से अभिप्राय है उन सामान्य कर्त्तव्यों का करना जिनसे हमारा दैनिक जीवन बनता है और जो कवि के शब्दों में 'हमको प्रतिदिन ईश्वर के समीपतर लेते जाते हैं'—Lead us daily nearer God. मैंने इन शब्दों का ज़िक्र अपने प्रथम व्याख्यान के अन्त में, जिसे आज कई सप्ताह हुए, और पुनः अपने पिछले रविवार के व्याख्यान में किया था।

हम सबके दैनिक कर्त्तव्य होते हैं। यद्यपि सबके कर्त्तव्य समान नहीं होते, तथापि कोई उनसे मुक्त नहीं रहता और वे यथा-समय नियत रूप से हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं। उनका यह नियतत्व हमारे लिए, इस विद्यालय में तो अच्छी तरह स्पष्ट है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक लगातार हममें से प्रत्येक व्यक्ति छोटे छोटे अनेक कर्त्तव्यों का, जिनमें से अनेक तो एकाध घंटे में ही समाप्त हो जाते हैं, जीवन व्यतीत करता है। दिन का प्रत्येक घण्टा—नहीं, प्रत्येक क्षण—इस प्रकार व्यतीत होता है, चाहे वह हँसने, बोलने, खेलने किसी भी काम में व्यतीत हो, कि देखने में तुच्छ मालूम होने पर भी उसका फल सामान्य नहीं होता। क्योंकि इन्हीं छोटे छोटे कर्मविन्दुओं से तुम्हारा जीवन-सागर बना है; और जैसा अंश होगा वैसा ही अंश-रचित सम्पूर्ण पदार्थ भी होगा। छोटे अवसरों का उपयोग, साधारण कर्त्तव्यों का उचित पालन, ही अन्त में हमारे जीवन को सच्चरित्र बना

सकता है। इसके विपरीत, ऐसे कर्त्तव्यों की उपेक्षा करना, ऐसे अवसरों का दुरुपयोग करना ही अन्त में हमारी नैतिक शक्ति को चूस कर हमारे जीवन को नीच और अपकृष्ट बनाता है।

और, विद्यालय में ही नहीं, ये कर्त्तव्य तुम्हारे लिये सब जगह मौजूद हैं। जहाँ कहीं भी तुम रहो तुम प्रत्येक क्षण जीते हो; और मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य सदाचार-पूर्वक जीवन व्यतीत करना है। शायद यहाँ विद्यालय में, घर की अपेक्षा यह बात तुम्हारे लिए कुछ आसान हो, क्योंकि तुम्हारे, यहाँ के कर्त्तव्य तुमको अच्छी तरह समझा दिए जाते हैं। परन्तु यह याद रक्खो कि, जहाँ कहीं भी तुम होओ, अच्छी तरह व्यतीत किया हुआ प्रत्येक क्षण तुमको ईश्वर के अधिक समीप ले जाता है और बुरी तरह नष्ट किया हुआ प्रत्येक क्षण तुमको उससे दूर हटाता है। जितने परिमाण में हमारे जीवन के अंश ईश्वर की समीपता में या उससे पृथक् व्यतीत किए जायँगे उतने ही परिमाण में हमारा समस्त जीवन भी अच्छा या बुरा होगा।

छोटे कर्त्तव्यों का पालन कोई आसान काम नहीं है और अन्य कामों की तरह उनका भी महत्त्व उनके पालन को कठिनाइयों से देखा जाता है। प्रत्येक क्षण सतर्क रहना कठिन है परन्तु फिर भी, यदि हम अपने प्रत्येक काम को उचित रूप से करना चाहते हैं तो, हमको सतर्क रहना चाहिए। प्रतिक्षण दया का व्यवहार करना, दूसरों का खयाल रखना, उचित कार्य ही को

करना, पढ़ाई के समय में अध्ययन-परायण रहना तथा खेल के समय में सदैव आपस में सद्भाव रखना आदि बातें सहज नहीं हैं। इनके लिये दृढ़-संकल्प-शक्ति, आत्म-संयम और परम सावधानी की आवश्यकता है। किसी आकस्मिक बड़े काम की अपेक्षा अपने रोज़मर्रा के साधारण कर्त्तव्यों में इन गुणों की अधिक जरूरत है, क्योंकि इसके लिये हमको इनकी आदत डालनी पड़ती है। और जो मनुष्य अपने सामान्य कार्यों को अच्छी तरह कर सकेगा वही किसी आकस्मिक विपत्ति या आवश्यकता के समय भी अधिक सफल हो सकता है। जो अपने दैनिक जीवन में आत्मविजय प्राप्त करता है वह सच्चा बहादुर है। इसीलिए "सालोमन" ने कहा है, "जिसे क्रोध नहीं आता वह बलवान् से अच्छा है और जो अपनी वृत्तियों को जीतता है वह नगर जीतने वाले से अधिक शूर है।" हमारा अनुभव भी यही बताता है। क्या वह सिपाही जो कभी युद्ध में नहीं गया, परन्तु शान्ति के समय में जिसका चरित्र बड़ा दृढ़ रहा है, लड़ाई में अच्छा सैनिक नहीं रह सकता। उसके चरित्र से परिचित लोगों को विश्वास है कि अनुभवशून्य होने पर भी वह लड़ाई में अचल और निर्भय रहेगा। सदुद्देश्य में दृढ़ रहना, छोटे छोटे कार्यों द्वारा चरित्र-संगठन करना सुकर्मों के लिये बार बार प्रयत्नवान् होना आदि ऐसी बातें हैं जो हमको वास्तविक बल देती हैं और अन्त तक धैर्यपूर्वक काम करने योग्य बनाती हैं।

मित्रों, क्या तुमको अपना यहाँ का जीवन निरानन्द मालूम

होता है ? क्या तुमको अपने दैनिक कर्त्तव्यों की अनवीनता अच्छी नहीं लगती ? क्या तुम समझते हो कि यहाँ तुम्हारा समय नष्ट हो रहा है और तुम यहाँ के शासन के आधीन होने तथा ज्ञानोपार्जन करने की अपेक्षा अन्य कामों में अधिक सफल हो सकते थे; और क्या तुम्हारा विचार है कि इस प्रकार के प्रयत्नों से कोई लाभ नहीं, और यदि ईश्वर तुम्हें अधिक योग्यता या शरीरिक शक्ति देता तो तुम अपने विद्यार्थी-जीवन को अधिक सुखी और सफल बना सकते थे ? परन्तु अब तो तुम जैसे हो वैसे हो। क्या ऐसी दशा में तुमसे कोई भलाई की आशा की जा सकती है ? तब फिर उद्योग करने से ही क्या लाभ है ?

परन्तु नहीं, तमाम लाभ उद्योग करने में ही है, और ईश्वर तुम्हारी भलाई के लिए तुमको इन उद्योगों के अवसर देता है। हम सब चतुर या बलवान् नहीं हो सकते परन्तु हम ईश्वर को प्रसन्न करने का, जिस स्थिति में उसने हमको रक्खा है उसमें अपने कर्त्तव्य पालन करने का, प्रयत्न कर सकते हैं। इसमें हम सब, चाहे कोई सबल हों या निर्बल, मूर्ख हों या चतुर, एक से हैं। प्रत्येक के लिए परीक्षा के समय आते हैं जिनमें वह अपना अवस्था के अनुरूप कर्त्तव्य पालन कर सकता है । यह परीक्षा कुछ भी हो, ईश्वर उसे जानता है, उसीने उसे नियत किया है; अतएव, उसकी दी हुई बुद्धि और बल द्वारा हम उसमें सफल हो सकते हैं। परन्तु बिना उद्योग के सफलता नहीं होती, बिना लड़े

युद्ध नहीं जीता जाता। यह सन्देह और शङ्काएँ ही, जिनका मैंने ऊपर जिक्र किया है, तुम्हारे शत्रु हैं, जिन्हें ईश्वर में विश्वास रखकर तुम जीत सकते हो। यही उपाय है जिससे हम अपनी कठिनाइयों को पार कर सकते हैं, अपनी निर्बलता को शक्ति में बदल सकते हैं;अर्थात् हम अपने प्रत्येक कर्त्तव्यको ईश्वरकी भेजी हुई परीक्षा समझें और उसका ईश्वर की सहायता द्वारा ही पालन करें, इसका विश्वास रक्खें कि हमारा परमपिता हमारे करने योग्य काम ही हमारे सुपुर्द करता है और हम उन्हें उसकी कृपाका भरोसा रखकर पूरा कर सकते हैं, तथा हम आश्रय और सदुपदेश के लिए उसी को अपना अवलम्ब समझें। अतएव, जो कुछ भी तुम्हारी कठिनाई हो—तुम्हीं उसे अच्छी तरह समझ सकते हो—आज ही से सङ्कल्प करो कि तुम उसका सामना करने में जुट जाओगे और बराबर, प्रति दिन, प्रति क्षण, अपने उद्योग को मनुष्य की तरह अध्यवसायपूर्वक जारी रक्खोगे। क्या तुम अपने साथियों के साथ परुष, रूक्ष या अन्धकोपी हो जाते हो ? इन त्रुटियों पर विचार करो और सतर्कतापूर्वक उन अवसरों का ध्यान रक्खो जब तुमको इनके उत्पन्न होने का भय हो। ऐसे अवसरों पर विशेष सतर्क रहो जब, मसलन, तुम थके हुए हो, क्योंकि ऐसी मानसिक दुर्बलताएँ प्रायः शरीर की कमजोरी से ही पैदा होती हैं। यदि तुम्हारी वृत्तियाँ स्वार्थपरता या आलस्य की ओर हों तो अपने लिए ऐसे संयामक नियम बनाओ जिनसे तुम्हारी स्वार्थबुद्धि या आलस्य का निग्रह हो सके, और

इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करो। यदि तुम में कभी कुविचार, दुर्वासना या अभिमान उत्पन्न हो तो याद करो कि ईश्वर समीप है और वह ऐसी बातों से घृणा करता है। जिस समय तुम उसका ध्यान करोगे उस समय समस्त कुविचार तुम्हारे मन से हवा हो जाएँगे। अतः जो कुछ हम करें हम ईश्वर के लिए करें, मनुष्य के लिए नहीं; और तब हमारा प्रत्येक काम अच्छा और महत्त्वपूर्ण होगा।

मैंने छोटे कार्यों की बड़ी कठिनाइयों और उनके बड़े परिणामों के विषय में कहा है। परन्तु इन बातों की गुरुता और लघुता का निर्णय कौन करे। यदि अनुभव या परिणामों से इसका निर्णय किया जाय तो मालूम होगा कि वही काम जो एक समय अति सामान्य या तुच्छ होता है दूसरे समय बड़े महत्त्व का हो जाता है। उदाहरणार्थ, भाप को लेलो। अब से ढाई सौ वर्ष की बात है जब "मार्किस आव् वॉरेस्टर" ने एक बटलोही में से निकलती हुई भाप को देखकर भाप के एञ्जिन का आविष्कार किया था। तुम कहोगे कि बटलोही एक सामान्य और घरेलू चीज है; परन्तु देखो उसके आश्चर्यजनक परिणाम को। और जो बात इस प्रकार जड़ शक्ति की है वही उस विचित्र नैतिक शक्ति की भी है जिसके कारण साधारण घटनाएँ भी, न मालूम किस तरह, हमारे मन पर अपना प्रभाव डालती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत कुछ हमारी उस समय की चित्तवृत्ति और परिस्थिति पर भी निर्भर रहता है जब कि हम पर यह प्रभाव होता

है; परन्तु साथ ही क्या यह बात भी सत्य नहीं है कि प्रति दिन की छोटी घटनाएँ—सामान्य दृश्य और सामान्य शब्द—कभी कभी हमारे हृदयों में ऐसा स्थान कर लेते हैं और हमारे जीवन तथा चरित्र पर इतना प्रभाव डालते हैं कि कितनी ही बड़ी घटनाएँ भी वैसा नहीं डाल सकतीं ? इसका मैं एक उदाहरण देता हूँ—

मान लो, तुम पहली ही बार बम्बई गए और वहाँ तुमने अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखीं। तुमने साफ-सुथरी चौड़ी-चौड़ी गलियाँ देखीं, किले के भवन देखे, महारानी तथा युवराज की प्रतिमाएँ देखीं, सुन्दर क्लॉक टॉवर तथा विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी देखी, एल्फिंस्टन कालिज देखा, क्राफोर्ड बाजार और विक्टोरिया स्टेशन देखा तथा प्रिन्सेज डॉक, टकसाल, सेक्रेटेरियट, गवर्नर का निवास-भवन आदि कितनी ही अन्य वस्तुएँ देखीं। इन सबको देखकर तुम अवश्य आश्चर्य-चकित और विस्मय-विमुग्ध हो गए। परन्तु जाती बार जब तुम्हारी गाड़ी बड़ौदा के स्टेशन पर खड़ी हुई तब तुमने एक अति सामान्य दृश्य देखा जिसका बम्बई के बड़े-बड़े और सुन्दर दृश्यों की अपेक्षा तुम्हारे हृदय पर अधिक प्रभाव हुआ। तुमने देखा कि सायंकाल के धुँधले प्रकाश में एक नवयुवक प्लैटफ़ार्म पर खड़ा हुआ अति उदास मन से अपनी माता से विदा ले रहा है। उसकी उदासी का भाव कुछ ऐसा अवर्णनीय था कि वह तुम्हारे हृदय को छू गया। तुमने अनुभव किया कि माता-पुत्र का वह वियोग बड़े

कष्ट का वियोग था। परन्तु तुम कर ही क्या सकते थे? गाड़ी छूट गई और बड़ौदा पीछे रह गया। अगले रोज बम्बई में तुम्हारी आँख खुली; तुमने नए दृश्य देखे, नए मनुष्य देखे। परन्तु उस उदास मुख की स्मृति तुम्हारे हृदय में बनी रही और मृत्युपर्यन्त बनी रहेगी।

मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि ऐसी घटना सचमुच तुम्हारे साथ हुई, परन्तु मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार की कोई न कोई घटना कभी न कभी हममें से प्रत्येक के अनुभव में अवश्य आई है। ये छोटी-छोटी बातें ऐसी हैं जो जीवन के उपदेशों को हमारे हृदय में अमिट रूप से अङ्कित करती हैं। कवि वर्ड्स-वर्थ बार-बार हमको बतलाता है कि इन छोटी-छोटी बातों का उसके मन पर कैसा प्रभाव पड़ता था। झील के किनारे लहलहाते हुए सुनहरी फूलों का बन, खेत में नाज काटती हुई बालिका का मधुर गीत, पर्वतों तथा नदियों की सुन्दरता—ये ऐसी वस्तुएँ हैं जिन्हें वह कभी नहीं भूल सकता था। उसके लिए क्षुद्र से क्षुद्र पुष्प भी, जो खेत के किनारे खिलता है, हृदय में ऐसे भावों का उदय करता है जो प्रायः आँसुओं द्वारा भी नहीं कहे जा सकते।

हम सब वर्ड्सवर्थ की तरह भावुक नहीं हो सकते परन्तु हम सब मानव-हृदय रखते हैं। जैसे भाव हम बाहर से ग्रहण करेंगे वैसे ही हम दूसरों को भी दे सकेंगे। जो कुछ भी हम करते या कहते हैं, कितना ही छोटा काम हो, एक शब्दमात्र

हो अथवा दृष्टिपात भर हो, हमारे आस-पास के लोगों पर उसका भला या बुरा प्रभाव अवश्य पड़ता है, और यह प्रभाव कभी कभी स्थायी भी हो सकता है। अतः जो कुछ भी हम कहें या करें, हर बात में हमें इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए। हमारे जीवन का एक क्षण तक बेकार नहीं है, हरेक क्षण हम अपने या दूसरों के लिये कुछ न कुछ करते रहते हैं, जिसका हम पर या दूसरों पर प्रभाव पड़ता है। और यह क्रिया थोड़ी देर ही नहीं रहती—वह तो अनन्त काल तक की क्रिया है। और फिर, इस दृष्टि से देखने पर हमारा छोटे से छोटा काम भी छोटा नहीं रह जाता—वह असीम महत्त्व का कार्य बन जाता है।

११—मित्रता ।

यह देखते हुए कि हम क्या हैं और एक दूसरे पर कितने निर्भर हैं, यह सोचते हुए कि यदि संसार इतना अनुदार न होकर अधिक दयाशील होता तो हमारा सुख कितना अधिक बढ़ जाता, हम इस युग में सच्ची मित्रता के अभाव पर खेद प्रकट कर सकते हैं। इसका क्या कारण है कि पहलीकी मुलाक़ात पर लोग एक दूसरे

के सामने अपना हृदय नहीं खोल देते तथा पारस्परिक प्रेम और विश्वास के साथ खुल कर नहीं मिलते ? क्या यह हमारी मानव-प्रकृति को शोभा देता है कि हमारी मित्रताएँ हमारे हृदय पर जमे हुए अविश्वास रूपी बर्फ़ के धीरे धीरे पिघलने का एक लम्बा क्रम बनी रहें ? किसी पर विश्वास करने के लिए हमें प्रथम उससे परिचित होने की क्यों आवश्यकता है ? क्या यह बात अधिक उदार और उच्च तथा साथ ही संशयहीन नहीं होती कि परिचित होने से पूर्व हम एक दूसरे का विश्वास कर सकते—अपने साथियों को, पहले ही दर्शन पर, अपना स्नेह और अनुराग दे सकते ?

हमको मानना पड़ेगा कि इस प्रकार की निष्कपट सरलता के अभाव का कारण, स्पष्ट रूप से संसार में इतने अधिक पाप का होना है। सचमुच, यदि कहीं भी पाप न होता तो हमको किसी बात से भी डरने या दूर भागने की जरूरत न थी। परन्तु जैसी वस्तुस्थिति है उसमें हम सब पर समरूप से विश्वास नहीं कर सकते। यदि हम ऐसा करें तो क्या संसार हमारे उद्देश्य को समझेगा ? शेक्सपियर ने, 'जिसका संसार-ज्ञान वास्तव में अद्भुत था, पोलोनियस द्वारा ठीक ही कहलाया है:—

"Those friends thou hast, and their adoption tried,
Grapple them to thy soul with hoops of steel.
But do not dull thy palm with entertainment
Of each new-hatched, unfledged comrade."

अब, पहले यह विचारना चाहिए कि मित्रता का हम अर्थ क्या करते हैं? प्राचीन रोमन विद्वान् सिसेरो ने, इस विषय पर अपने एक निबन्ध में, मित्रता को "सब बातों में पारस्परिक ऐकमत्य तथा एक दूसरे में प्रेम और सहानुभूति का होना" बतलाया है। उसका यह भी सिद्धान्त है कि "सच्ची मित्रता केवल सत्पुरुषों में ही हो सकती है," अर्थात् "सत्पुरुष ही सत्पुरुष की ओर सब से अधिक आकर्षण और सच्चे भावों का अनुभव कर सकते हैं।" परन्तु मैं समझता हूँ, हमें इस सम्मति में शंका है कि 'सब बातों में ऐकमत्य' मित्रता के लिये आवश्यक है; अन्यथा हम सिसेरो की व्याख्या से सहमत हैं।

अब, चूँकि सत्पुरुषत्व मित्रता की एक आवश्यक शर्त है, और चूँकि सब लोग सत्पुरुष नहीं हैं, इसलिए सब लोग मित्र नहीं हो सकते। संसार ने इस बात का पता लगा लिया है और वह अपनी इस उपलब्धि के अनुसार ही व्यवहार करता है।

परन्तु मित्रता, यदि हो जाए तो, कितनी आनन्ददायिनी है। क्या किसी और वस्तु से भी इतना आनन्द प्राप्त हो सकता है? "दुनिया में कोई भी वस्तु", सिसेरो के ही शब्दों में, "मित्रता से अधिक मूल्यवान् नहीं है।" ज़रा उस प्रफुल्लता की, उस निवृत्ति और सहानुभूति की कल्पना तो करो जो एक मित्र अपने मित्र को उसे सुख-दुःख के समय में दे सकता है। जिसका कोई मित्र है वह कभी अकेला नहीं है। वह कभी कष्ट या हानि की आशंका

नहीं करता। वह जानता है कि संसार में उसकी एक चीज़ है और वह ऐसी चीज़ है जो सर्वोत्तम है, जो संकट के समय उसका साथ नहीं छोड़ सकती—सहानुभूति से भरा हुआ एक मानव-हृदय—सहायता के लिये तत्पर एक मनुष्य का हाथ।

तमाम मित्रताओं में वह मित्रता शायद सब से अधिक शुद्ध और सजीव होती है जो हमारे जीवन के पहले दिनों में बनती है। उन दिनों में जब कि हमारी आशाएँ अम्लान और बलवती होती हैं और जब जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होने से पूर्व हम यहाँ की निराशाओं, परीक्षाओं और शोकपातों से अपरिचित होते हैं। अपने नव यौवन की सोत्साह सरलता के दिनों में जब कि उस समय तक हमारे हृदय बुराई से बचे रहते हैं और हम अधिकतर जीवन के उज्ज्वल अंश को ही देखे होते हैं, हम अपने हृदयों को अत्यन्त निर्मलता और प्रफुल्लता के साथ दूसरों को अर्पण कर देते हैं, जिनका हमारे बाद के अनुभव में एक प्रकार से अभाव हो जाता है। उस समय हमें किसी बात का डर नहीं होता। किसी की आशंका नहीं होती। हमारे चारों ओर के पदार्थों की प्रवृत्ति हमारी अकांक्षाओं को मधुर बनाने की ही ओर होती है, कटु बनाने की ओर नहीं। परन्तु यह बात अधिक बड़े होनेपर प्रायः नहीं रहती, क्योंकि फिर हमको तरह तरह की निराशाओं का, दुखों का, प्रतिस्पर्द्धा का, सामना करना पड़ता है—शायद कभी टूटी हुई मित्रताओं और विदीर्ण हृदयों का भी। और इन बातों से हमारा उत्साह, नष्ट तो नहीं, परन्तु शिथिल अवश्य हो जाता है। परन्तु,

जीवन के पूर्वकाल में हो या उत्तरकाल में, वही मनुष्य सब से अधिक भाग्यशाली है जो सच्ची मित्रता का सुखोपभोग करता है, जो समझता है दुनिया की निराशाओं और परीक्षावसरों के बीच में, यहाँ के स्वार्थ, निर्दयता और पापाचरण से घिरे होने पर भी, जीवन का सौन्दर्य उसके लिए नष्ट नहीं हो गया है। क्योंकि जीवन की सुन्दरता पुराने मित्रों के स्नेह में होती है और यह, ज्यों ज्यों जीवन का अन्त निकट आता है, अधिकाधिक गम्भीर और दृढ़ होती जाती है। कितने ही मनुष्य अपनी जीवन-संध्या के बढ़ते अन्धकार में ऐसे सुख का अनुभव कर चुके हैं, और उन्हें इसके लिये ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए।

परन्तु उनसे अधिक धन्यवाद तुम्हें देना चाहिए, जिनको यहाँ अपने यौवनकाल की मित्रताओं के अपूर्व अवसर प्राप्त हैं, विशेषतः इसलिए कि तुम सब समवयस्क हो और अपनी सामाजिक स्थिति, ज्ञान और आशाओं आदि में समान हो। तुममें से एक दूसरे के सम्बन्धी भी हैं। यहाँ तुम प्रत्येक क्षण अपने साथियों की सहायता कर सकते हो, उन्हें शुभ सम्मति दे सकते हो, उनके विचारों और भावों को ग्रहण कर सकते हो तथा दुःखों को घटाने और सुखों को बढ़ाने में सहायक हो सकते हो। और, ऐसा करने के लिए तुम सबसे अनुकूल अवस्था में हो, क्योंकि जहाँ एक ओर तुम्हारे हृदय उत्साह और सरलता से भरे हुए हैं वहीं दूसरी ओर वे उन सांसारिक प्रभावों से अस्पृष्ट हैं जो अनुचित ईर्ष्या और निंद्य तथा स्वार्थपूर्ण सन्देहों को उत्पन्न करते हैं।

मुझे आशा है कि इन लाभों को ध्यान में रखकर तुममें से कितने ही आपस में स्थायी मित्रता स्थापित कर चुके होंगे या करने के इच्छुक होंगे। परन्तु यह जान रखना उचित है कि कोई मित्रता सच्ची नहीं हो सकती जो सदाचार की भित्ति पर स्थित न हो। जब तक पारस्परिक प्रेम के साथ साथ पारस्परिक आदर के भाव हृदय में न होंगे तब तक मित्रता नहीं हो सकती; और कोई मनुष्य—यहाँ तक कि तुच्छ और दुराचारी भी—किसी बात का आदर नहीं कर सकता जो सदाचार से भिन्न है। मेरा आशय यह नहीं है कि मित्रों को योग्यता, रुचि या प्रकृति में सर्वथा समान होना आवश्यक है। प्रत्युत हम प्रायः अपने मित्रों के उन गुणों की प्रशंसा करते हैं जो हम जानते हैं कि हममें नहीं हैं और एक प्रकार से गुणों के आदान-प्रदान द्वारा एक दूसरे की त्रुटियों को दूर करते रहते हैं। परन्तु मेरा यह कहना है कि प्रत्येक मित्र में ऐसे गुण होने चाहिएँ जिनका दूसरे शुद्ध हृदय से अनुमोदन कर सकें। पारस्परिक सहायता और प्रोत्साहन पारस्परिक आदर से ही उत्पन्न होते हैं। कारण कि, संसार में और भी बहुतेरी संगति दिखाई देती हैं, जिन्हें देखनेवाले मित्रता समझने लगते हैं, परन्तु जो मित्रता नहीं है, किन्तु किन्हीं किन्हीं दशाओं में शत्रुता के बराबर होती हैं। मेरा मतलब लड़कों की उन छोटी छोटी गोष्ठियों से है जो वे प्रायः किसी गुप्त पाप या गन्दी बातचीत को गुप्त रूप से करने अथवा कालिज का कोई नियम तोड़ने आदि के लिए बनाते हैं। जो

कोई भी इस तरह की मित्रता जोड़ता है वह अपनी तथा अपने साथी की आत्मा को कलंकित कर दुगने पाप का अपराधी होता है। वह प्रकाश के विरुद्ध अपराध करता है और अपने साथी को अन्धकार में घसीटता है। तुम जानते हो कि कालिज के नियम तुम्हारी भलाई के लिए ही बनाए जाते हैं और उनका पालन कर तुम अपना ही उपकार करते हो इसी प्रकार अपने साथी को भी उनके पालन में सहायता देकर तुम उसके साथ सच्ची मित्रता का व्यवहार करते हो। परन्तु पहले तुमको स्वयं उसका पालन करना चाहिए। यहाँ शेक्सपियर के हैमलेट के शब्द फिर याद आते हैं जिनमें पोलोनियस कहता है:—

"This above all: To thine ownself be true,
And it must follow, as the night the day,
Thou canst not then be false to any man."

इसके साथ ही मैं Tom Brown's schooldays नामक पुस्तक में से भी कुछ उद्धृत करना चाहता हूँ। जब टामब्राउन का पिता उसे स्कूल में छोड़कर जाने लगता है तब वह उसे उपदेश देता है कि, "सदैव सच बोलना, हृदय के निर्भीक परन्तु सदय रहना, तथा कभी कोई ऐसी बात मत कहना या सुनना जिसे तुम अपनी माता या बहन को नहीं सुनने देना चाहते हो।" मैं भी तुमको यही उपदेश देता हूँ। यदि तुम इसके अनुसार चलोगे तो, मुझे विश्वास है, तुम्हें कभी मित्रों की कमी नहीं होगी।

इसका कोई कारण नहीं है कि तुम में से हरेक एक दूसरे का मित्र न हो। मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि क्यों हम सब मास्टर और लड़के, बुड्ढे और जवान, चतुर और मन्द, दुर्बल और बलवान् आपस में मित्र न हों, और एक दूसरे के लाभ के लिए, सार्वजनीन लाभ के लिए, प्रयत्न न करें। मुझे इसका भी कोई कारण दिखाई नहीं देता कि इस कालिज में स्थापित की हुई मित्रताएँ हमारे बाद के जीवन में भी जब कि हमारा कालेज से कोई सम्बन्ध न रहेगा, क्यों न कायम रहें। ऐसा होने पर इस कालेज में ही नहीं, बल्कि तमाम जीवन भर हम कैसी हार्दिक सहानुभूति और सहायता एक दूसरे को दे सकेंगे! यदि ऐसा हो जाए तो हमारा कालिज एक कितनी धन्य संस्था हो जाएगा! और मैं नहीं समझता—ईश्वर हमारी सहायता करे—कि ऐसा क्यों नहीं हो सकता। इसको इस तरह का बनाने के लिए केवल एक बात की जरूरत है कि हम सब अच्छे बनें।

१२—उदारभाव ।

मनुष्य के चरित्र का थोड़ा बहुत अंश उसके बाह्य व्यवहार में भी अवश्य प्रतिभासित हो जाता है। यह एक ऐसी बात है जिसे हम अपने पारस्परिक व्यवहारमें देखे बिना नहीं रह सकते। कितने ही लोगों ने तो इसे यहाँ तक प्रधानता दी है कि उन्होंने जातीय सेवा की परीक्षाओं में इसे एक परीक्ष्य विषय बनाने के

प्रस्ताव भेजे हैं। उनका कहना है कि परीक्षार्थियों को परीक्षकों के ऊपर अपने बाह्य आचरण द्वारा अच्छा बुरा प्रभाव डालने के लिए भी नम्बर दिए जाएँ। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य की सूरत-शक्ल, उसका रँग-ढँग तथा उसके चेहरे की भाव-बोधकता आदि का दूसरों के ऊपर उसका प्रभाव डालने में बड़ा भाग है। हम सब इसे मानने को तैयार हैं। परन्तु साथ ही, मुझे भय है, हमें यह भी मानना पड़ेगा कि जितनी हम दूसरों की सूरत-शक्ल देख कर उनका चरित्र समझने में त्रुटियाँ करते हैं उतनी शायद और किसी भी बात में नहीं करते। कितनी बार हम अपनी पहली मुलाक़ात में दूसरों के प्रति ऐसी प्रतिकूल धारणाएँ बनाते हैं जो बादमें घनिष्ठता के बढ़ने पर झूठी साबित होती हैं? मैं कहता हूँ—प्रतिकूल धारणाएँ; क्योंकि यदि हमारी पहली धारणा अनुकूल होगी तो वह अन्त में प्राय: सत्य ही निकलेगी और हमें उसके लिए खेद करने का कोई कारण न रहेगा। प्रतिकूल ये धारणाएँ ही हैं—और दुर्भाग्य से उन्हें ही हम सब से अधिक आश्रय देते हैं—जो प्राय: मिथ्या निकलती हैं। उस समय यदि हम इन प्रतिकूल धारणाओं को किसी प्रकार व्यक्त कर दें—अपने व्यवहार द्वारा या दूसरे लोगों से कहकर—तो हम अपने साथियों के प्रति एक अन्याय करते हैं, जिसका प्रतिफल किसी भी बाद के सद्व्यवहार से नहीं दिया जा सकता।

अतएव मैं कहता हूँ कि हमको अपनी पहली धारणाओं पर कभी विश्वास न करना चाहिए। धारणाओं को तो बनने से हम

रोक नहीं सकते, परन्तु उनकी रहनुमाई में चलना ठीक नहीं। इसके विपरीत, हमको उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए। हमको सोचना चाहिए कि अपने पड़ोसी में बुराई का ख़याल करना बुरा है। क्योंकि यदि हम भली भाँति विचार करें तो मालूम होगा कि सम्भवतः उसकी बुराई इतनी बुरी नहीं जितनी उस बुराई की हमारी अवधारणा और अहंमानिता।

तुमने हरभाम जी * से शायद सुना होगा कि 'लिंकन्स इन' की सभा का यह नियम है कि वकालत आरम्भ करने से पहले उसके सदस्यों को भोजन के उपरान्त अपने सहभोजी बैरिस्टरों के सामने उपस्थित होना पड़ता है। इन बैरिस्टरों में से कोई भी बैरिस्टर किसी भी सदस्य को अयोग्य समझ कर उसके बैरिस्टर बनने में आपत्ति कर सकता है और अपनी आपत्ति को उसके गाउन (चोगे) को खींचकर या उसका परिचय-पत्र फाड़कर ज़ाहिर कर सकता है। मेरी समझ में बैरिस्टरों के सामने उपस्थित होने का यह नियम इस विश्वास पर स्थित है कि जो लोग वकालत का पेशा करते हैं उन्हें विशेष रूप में न्याय-परायण, सत्यप्रिय और वाह्य आकृति आदि में सौम्य होना चाहिए। तथापि कोई भी

---

* मोर्वी के ठाकुर साहब के छोटे भाई। पहले ये राजकुमार कालिज में पढ़ते थे। बाद में कैम्ब्रिज के ट्रिनटी कालिज से बी० ए० और वकालत की परीक्षाएँ पास करके Lincoln's Inn के एक बैरिस्टर हो गए। इस समय (१९१२ ई०) भरतपुर के दीवान हैं।

सदस्य केवल आकृति आदि के कारण ही निराकृत नहीं कर दिया जाता, और यह है भी ठीक; अन्यथा इंगलैण्ड के कोई कोई सब से बड़े वकील भी कभी वकालत न कर पाते। यहाँ तक बाह्य आकृति कभी कभी धोखा दे जाती है।

मनुष्य जैसे हैं वैसे ही हैं। हमको अपनी ही मानसिक वृत्ति का समझना कठिन होजाता है—फिर दूसरों की मनोवृत्तियों का तो कहना ही क्या। स्वभाव में, शिक्षा में, आदतों में, रुचि में, हम एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं—एक दूसरे से क्या, कभी कभी तो भिन्न भिन्न परिस्थितियों में पड़कर हम अपने आप से भी भिन्न हो जाते हैं। सामान्यतया कहा जाता है कि जो समुद्र की बड़ी बड़ी यात्राएँ करता है वह अपने आकाश को बदलता रहता है, परन्तु मन को नहीं। यद्यपि उसके स्थान, जल, वायु आदि बदल जाते हैं, तथापि उसकी प्रकृति वैसी ही रहती है। और यह बहुत ठीक है। परन्तु जब कोई मनुष्य जीवन के दैनिक कर्मों से अतीव परिश्रान्त हो कर वायु-परिवर्त्तन के लिए दूसरे देश को जाता है तब, उसकी प्रकृति में प्रायः कोई विशेष परिवर्त्तन न होने पर भी, विश्रान्ति के कारण वह एक नया ही मनुष्य हो जाता है। चिन्ताओं और परिश्रम से थक कर वह विरक्त, चिड़चिड़ा और उदासीन हो गया होगा, परन्तु अब नवीन अनुभवों, नए वातावरणों, और निवृत्ति में रहने के कारण उसके स्वभाव में एक विचित्र उल्लास, सहानुभूति और मधुरता आ गई है। जो लोग उससे इस निवृत्ति के बाद मिलेंगे उनकी उसके विषय में दूसरी

ही धारणा होगी। मनुष्य वही है, प्रकृति वही है, परन्तु नए वातावरण और नई परिस्थिति के कारण उसकी मनोवृत्ति में तबदीली हो गई है।

और, यही बात हम सब के लिए भी लागू होती है। यह बात ठीक है कि कोई हममें से अधिक उदार हैं, अधिक बुद्धिमान् हैं, या अधिक निःस्वार्थी हैं; परन्तु इस विषय में हम सब एक से हैं कि हम सब पर बाहरी परिस्थितियों का असर होता है। हम सब को संसार के प्रलोभनों का, यहाँ की परीक्षाओं का—चाहे वह प्रलोभन और परीक्षाएँ सब के लिए समान न हों—सामना करना पड़ता है। अतएव, चूँकि हम नहीं जानते कि हमारे किसी पड़ौसी के प्रलोभनविशेष क्या हैं और कैसे हैं, हमको अपनी धारणा बनाते समय उसके लिए रियायत करने के लिए राजी रहना चाहिए। कुछ लोग जो बहुत सुकुमार या दुबले-पतले होते हैं पूर्वी हवा चलने पर प्रायः व्यवहार में अरुचिकर हो जाते हैं। परन्तु वे हवा को या अपने स्वभाव पर पड़ने वाले उसके असर को नहीं रोक सकते। ऐसे मनुष्य से ऐसी परिस्थिति में यदि हम पहली बार मिलें तो उसके स्वभाव के विषय में, जो वास्तव में अच्छा भी हो सकता है, हमारी धारणा बड़ी बुरी होगी। तथापि उसकी बदमिजाजी, संभव है, व्यवहार के किञ्चित् रूखेपन से आगे न बढ़ सके। इसी प्रकार सब तरह का दुःस्वास्थ्य, परिश्रम या थकावट शरीर द्वारा मनुष्य के स्वभाव पर असर डालते हैं, तथा इसी प्रकार जीवन के परीक्षावसर और दुरनुभव—धन का

चोरी जाना अथवा मित्रादिकों की मृत्यु—अच्छे से अच्छे मनुष्य को भी जीर्ण और मलिन कर देते हैं—उसकी शक्ति और उसके उत्साह को नष्ट कर देते हैं। ये बातें काल्पनिक नहीं हैं, सचमुच होती हैं—और प्रायः ऐसे समय में होती हैं जब कि हम उनके विषय में जानते भी नहीं। बलिष्ठ योद्धा के मुख पर दुःख और पीड़ा के चिन्ह दिखाई देते हैं, परन्तु हम कवच के भीतर छिपे हुए उस जख्म को नहीं देखते जो उसके कष्ट का कारण है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि कभी किसी मनुष्य के विषय में शीघ्रता से मत समझ बैठो कि वह बुरा है; क्योंकि वह दुःखी है।

इसी प्रकार साधारण बातों में भी, कभी किसी को बुरे अभिप्रायों का दोषी मत ठहराओ, जब तक कि तुम निश्चय न करलो कि तुम्हारा विश्वास ठीक है। हमको दूसरों के सम्बन्ध में राय बनाने में, और उससे अधिक राय देने में, बड़ा सावधान रहना चाहिए। तमाम जीवन भर ज्ञान प्राप्त करने के बाद भी हम कभी कभी अपने ही अभिप्रायों को समझने में भूल कर जाते हैं—पड़ौसियों की तो बात ही अलग है। हम उनके हृदय के अन्तस्तल में नहीं घुस सकते और शायद ही कभी उनके निजी मामलों को जान सकते हैं।

हमको दूसरों के सम्बन्ध में उदार तथा प्रेमपूर्ण भाव से सोचना चाहिए तथा इसी भाव से उनके प्रति व्यवहार भी करना चाहिए। मेरी समझ में, जो हमें बदमिजाजी या दुःस्वभाव

मालूम होता है वह नब्बे फ़ी सदी शारीरिक दुर्बलता के कारण होता है और एक मधुर वाक्य से—एक स्नेहपूर्ण वचन से—दूर किया जा सकता है। यहाँ काठियावाड़ में मैं बहुत सी अनुदार बातें* सुना करता हूँ। न मालूम, क्यों लोगों को उन्हें फैलाने में आनन्द आता है। मेरा खयाल है, वे केवल अविचार के कारण ही फैलाई जाती हैं, क्योंकि मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि मानव-प्रकृति इच्छापूर्वक इतनी निःस्नेह और निष्ठुर होसकती है। परन्तु हमको कभी उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए और न कभी उनको किसी के सामने कहना चाहिए। यदि किसी दशा में अपने व्यक्तिगत अनुभव से हमें यह मालूम भी हो जाए कि वे सच्ची हैं तो भी उनका किसी के सामने दुहराना उचित नहीं है। दुहराने से लाभ कुछ भी नहीं होगा, सम्भव है नुकसान भले ही हो जाए। क्योंकि, याद रखो, एकबार जब कोई मिथ्या कलङ्क की बात तुम्हारे मुँह से निकल गई तो वह तुम्हारे क़ाबू से जाती रही—वह सार्वजनिक वस्तु हो गई। दुःशील मिथ्यालाप को बढ़ाने वाला यह हमारा कैसा दान है जनता के लिए ?

जब हम, जो कि अक्सर दूसरों के बारे में इस प्रकार नीचता-पूर्वक सोचते रहते हैं—और वह भी कारण या प्रमाण के बिना ही—ईश्वर के सामने अपने निन्दाप्रचार के लिए उत्तरदायी ठहराए जाएँगे तो हम क्या उत्तर देंगे ? प्रेम महत् है, प्रेम का कार्य

---

*इनमें से कुछ का ज़िक्र पिछले व्याख्यानों में किया जा चुका है।

महत् है; और प्रेम के कार्य द्वारा हमारे विचार अपने ध्येय ही में लीन रहते हैं। हम अपने बारे में जितना चाहें सोचें—अपने विषय में जितना ही बुरा हम सोचेंगे उतना ही अच्छा है—परन्तु अपने पड़ोसियों के सम्बन्ध में हमको यथाशक्ति उदारतापूर्वक ही सोचना चाहिए, और यदि हम उदारता-पूर्वक नहीं सोच सकते तो हमारे लिए चुप ही रहना उचित है।

१३—पशुओं पर दया।

जितने आक्रमकों ने आ आकर दीन-भारत के मैदानों को रक्त से रञ्जित किया है उन में सबसे अधिक रक्त-पिपासु शायद ग़ज़नी का महमूद था। तथापि वह व्यक्ति महमूद का पिता ही था जिसके सम्बन्ध में यह हृदयस्पर्शी कहानी प्रचलित है। राजद्रोह होनेपर भी, सुबुक्तगीन ग़ज़नी के प्रथम शासक अलप्तगीन का ग़ुलाम था।

परन्तु दास के अतिरिक्त वह कुछ और भी अवश्य रहा होगा, क्योंकि वह अलप्तगीन की कन्या से विवाह कर उसका उत्तराधिकारी हुआ था। अपने यौवन में वह बहुत ग़रीब था— इतना ग़रीब कि अपने एकमात्र घोड़े पर चढ़ा-चढ़ा अपनी जन्मभूमि निशापुर के जंगलों में वह शिकार खेलता फिरा करता था। एक दिन संयोगवश उसने एक हरिणी को अपने छोटे बच्चे के साथ निःशंक भाव से वन में चरते देखा। उसने घोड़े को बढ़ाया और चुपके से हरिण को पकड़ उसकी टाँगे बाँध अपने सामने घोड़े पर रख कर वह घर को चल दिया। उसके पीछे पीछे बेचारी हरिणी भी अति कातर और दीन दृष्टि से उसकी तरफ़ देखती हुई चलने लगी। इस दृश्य को देख कर सुबुक्तगीन का हृदय दया से अभिभूत हो गया और उसने हरिण को छोड़ दिया। बच्चे को पाकर माता आनन्द से भरी हुई अपने स्थान को लौट आई, परन्तु जब तक सुबुक्तगीन दिखाई देता रहा वह कृतज्ञ और प्रेमपूर्ण दृष्टि से उसकी तरफ़ देखती रही। उसी रात को सुबुक्तगीन ने एक स्वप्न देखा जिस में पैग़म्बर साहब उससे कह रहे थे, "ऐ अमीर नासिरुद्दीन सुबुक्तगीन! एक रक्षारहित दीना हरिणी की तरफ़ तेरी आज की दया के कारण ईश्वर के सभा-भवन में तेरा नाम बादशाहों की सूची में लिखा गया है। इसीलिए, तू सदा इसी प्रकार अपनी प्रजा के साथ व्यवहार करना, क्योंकि दया और अनुकम्पा उस धन्यता और सुख के झरने हैं जो इस लोक और परलोक दोनों की नियामत है।"

यह एक बड़ी पुरानी कहानी है, परन्तु मैं नहीं समझता कि यह निरी गप है। जो कुछ भी हो, वह कम से कम मुसलमान धर्म के उस कोमल अंग को दिखाती है जो, तलवार और बन्दूक के सहारे नहीं, बल्कि दया और सहानुभूति के सहारे स्थित है और स्थित रहेगा।

आज का व्याख्यान आरम्भ करने के लिए मुझे यह कहानी ही उपयुक्त मालूम हुई, क्योंकि आज मैं तुम से 'पशुओं पर दया' के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। यह विषय इसलिए मेरे ध्यान में आया कि बम्बई की पशु-हिंसा-निवारिणी-सभा की एक शाखा यहाँ भी खोली जाने का प्रस्ताव हुआ है। प्रस्ताव हमारे मित्र कुँवर हरनाम जी ने किया था और यह उनके चरित्रौदार्य का द्योतक है। विलायत से लौटने पर जो बात उन्हें सब से अधिक शोक-जनक मालूम हुई वह पानी खींचने वाले पशुओं के कष्टों की उपेक्षा थी। और वास्तव में, सब धर्मों के अनुसार, जिस प्रकार हिन्दुस्तान में ढोरों के साथ व्यवहार किया जाता है वह अत्यन्त ही अधार्मिक और निर्दयता से भरा हुआ है। मुझे तो यह बड़ी विचित्र बात मालूम हुई कि एक ऐसे देश में, जहाँ गो-वंश की विशेष रूप से प्रतिष्ठा की जाती है, बोझ ढोने या पानी खींचने वाले बैलों के कष्टों पर ज़रा भी ध्यान न दिया जाए। क्या तुमने नहीं देखा कि किस निर्दयता से तुम्हारे गाड़ीवान् इन असहाय प्राणियों की पूँछ पकड़ कर ऐंठ देते हैं और कितनी बुरी तरह उनकी गर्दन छिली रहती है—यहाँ तक कि वे बेचारे

दर्द के कारण उन पर जुआ रखवाने में भी असमर्थ होते हैं। मुझे कहते दुःख होता है कि जिन गाय-बैलों की हत्या करना अधर्म समझा जाता है वे गाय-बैल तुम्हारी उपेक्षा के कारण—भीषण, दण्डनीय, निर्दय उपेक्षा के कारण—प्रायः बड़ी बुरी तरह प्राण त्यागने पर बाध्य होते हैं। परन्तु फिर भी दो तरह की मृत्यु में से हत्या द्वारा अकस्मात् मारे जाने पर ही अधिक अनुकंपा दिखलाई जाती है। यदि तुमको गाय-बैल के जीवन का इतना खयाल है तो उनके जीवनगत कष्टों का क्यों नहीं है? यही बात कम पवित्र जानवरों—घोड़े, गधे, ऊँट, बकरी आदि—के विषय में भी कही जा सकती हैं। बतलाओ, कितनी बार तुम देखते हो कि परिश्रम करते करते अधमरे हो जाने के बाद जब कि उन में खड़े होने तक का सामर्थ्य नहीं रह जाता कितने ही गधे घोड़े आदि लापरवाही से खोले जाकर अपने आप घास फूँस खाने के लिए छोड़ दिए जाते हैं। उनके साथ सहानुभूति करने वाला कोई नहीं होता। वे ही बेचारे असहाय अपने रोगी ढाँचों को देख देख कर आँसू बहाते रहते हैं। मैं कहता हूँ, हमारा भी इन पशुओं के प्रति कर्त्तव्य है, जो हमारे साथ अपने कर्त्तव्य का इतने निर्विकल्प भाव से पालन करते हैं। और यदि हरभाम जी के प्रयत्न से हम भविष्य में अपना कर्त्तव्य पालन करने लगें तो वे हमारे भी उतने ही धन्यवाद के पात्र होंगे जितने कि उन पशुओं के।

यहाँ मैं उन अन्य पशुओं के प्रति भी अपने कर्त्तव्य के बारे

में कह देना चाहता हूँ जिनसे हमारे दैनिक जीवन के सम्बन्ध में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। यह देखकर आश्चर्य मालूम होता है कि हम कितना अधिक उनके साथ रहते हैं और फिर कितना कम उनके विषय में जानते हैं। उनमें से तो कुछ हमारे प्रति घंटे के साथी—साथी ही नहीं, बल्कि हमारे मित्र और आश्वासक—भी हैं। कारण कि उनमें सहानुभूति की वह निःस्वार्थ, यद्यपि निर्वाक्, शक्ति है जो मनुष्यों में मिलनी कठिन है। यहाँ, भारत में, हम अपने इन मूक सहचरों की ओर उचित ध्यान नहीं देते। हमारी दीवारों पर दौड़ने वाली छिपकली, पेड़ों पर अपना घर बनाने वाली गिलहरी, छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े, चिड़ियाँ, चमगा-दड़ आदि सब हमारी दया और सहानुभूति के पात्र हैं। परन्तु मुख्यत: उन जानवरों का, जिन पर हमारा अधिक विशेषता से स्नेह है, हमको ख़ास तौर से ध्यान रखना चाहिए। हमको चाहिए कि हम प्रति दिन उनके बारे में सोचें और उनके आराम का ध्यान रक्खें। यदि हम ऐसा करेंगे तो वे कृतज्ञता-पूर्वक हमें उसका बदला देंगे, और यदि न भी देंगे तो हमें स्वयं ही बदला मिल जाएगा; क्योंकि, जैसा कि वर्ड्सवर्थ ने कहा है, 'दया उन छोटे छोटे नाम-शून्य विस्मृत कार्यों में से है जो एक अच्छे मनुष्य के जीवन का सर्वोत्कृष्ट भाग है। उनपर दया करने से हमारा हृदय उत्साहपूर्ण रहेगा और हमको अपने साथियों के प्रति समदु:खी और सदय होने में सहायता मिलेगी। जब मैं पहले-पहल भारत में आया था तब सर लॉरेंस पील ने मुझे

उपदेश दिया था कि 'सदा अपने हृदय को सोत्साह रखना। यदि मेरे पास प्रेम करने को कोई चीज न होती तो मैं एक मुर्गी को ही अपना प्रेम-भाजन बना लेता'। वह उपदेश आज मैं तुमको देता हूँ। मैं कहता हूँ कि सदा अपने हृदय को सोत्साह रक्खो तथा सुबुक्तगीन की तरह दयाशील बनो। कभी अपने आश्रित इन पशुओं को, जिनके विषय में तुम कुछ नहीं जानते हो, खिलवाड़ में निरर्थक दुःख मत दो। ऐसा सदय व्यवहार कम से कम प्रत्येक हिन्दू का उचित कर्त्तव्य है जो समझता है कि पशुओं की भी आत्मा है और वह आत्मा मनुष्यों की ही जैसी है। कुछ भी हो, हम यह अवश्य कह सकते हैं कि वे ईश्वर के ही पैदा किए हुए हैं और उसके बनाए हुए इस संसार तथा महत्कार्य के एक अंश हैं। हम उनकी परवाह करें या न करें परन्तु याद रक्खो ईश्वर अवश्य उनकी परवाह करता है और हम उसके सामने उनके प्रति अपने किए व्यवहार के लिए उत्तरदायी हैं।

अब रही शिकार की बात। क्या हम शिकार खेलते समय बेकार ही, और बिना किसी उचित कारण के ही, इतने पशुओं को पीड़ा नही पहुँचाते हैं? आरम्भ में अवश्य, आखेट करना भोजन का एक न्याय्य उपाय था। 'न्याय्य' इसलिए कहा कि ईश्वर के नियम के अनुसार, शिकार मारनेवाले शेर से लेकर कीड़े-मकोड़े खानेवाली छिपकली तक, सर्वत्र, जीवन द्वारा ही जीवन धारण किया जाता है। जीवन ही जीवन का उपाय* है। यह एक

* इसमें हमारा मेकनॉटन साहब से मतभेद हो सकता है।

प्राकृतिक नियम है जो मनुष्य के लिए भी उसी प्रकार लागू होता है जिस प्रकार दूसरे जानवरों के लिए, अर्थात् मनुष्य भी, जो सब प्राणियों में श्रेष्ठ है, आवश्यकता पड़ने पर भोजन के लिए दूसरे जीवों की जान ले सकता है। कुछ पालतू और कुछ जंगली जानवर इस काम में लाए जा सकते हैं और यदि उनके मारने में इच्छावश कोई निर्दयता नहीं की जाती है तो मनुष्य गोली से या किसी दूसरी तरह उनकी जान लेने में निर्दोष है।

परन्तु आज कल तमाम आखेट भोजन के लिए नहीं किया जाता। सुअर, लोमड़ी, गीदड़ आदि के शिकार यदि निर्दय नहीं हैं तो क्या हैं। मेरी समझ में, यह साबित करना असंभव है कि इस प्रकार का शिकार किसी तरह भी आवश्यक है। किन्हीं किन्हीं अवस्थाओं में अवश्य अपने आराम के लिए खटमल आदि कीड़ों को मारने की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु सदा ऐसा नहीं होता। अधिकतर वे मनुष्य के खेल के लिए ही मारे जाते हैं, जिससे उन्हें निश्चय ही पीड़ा पहुँचती है। जरा अपने को पीछा की जाती हुई लोमड़ी या चारों तरफ से भालों से घिरे हुए

परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मेकनॉटन साहब उस जाति और देश में पैदा हुए थे जहाँ भौतिक समृद्धि को सब बातों पर प्रधानता दी जाती है। इतना होने पर भी वे दया आदि सद्गुणों के इतने उपासक थे, यह पाश्चात्यों के लिए गौरव की बात है। अहिंसा धर्म तो भारतीयों का पुराना शास्त्रसम्मत धर्म है।

सुअर की स्थिति में रख कर अनुमान करो तो तुम्हें मालूम होगा कि इस समय उन पर कैसी बीतती है। मेरी समझ में उनके तात्कालिक भाव भी वैसे ही होते हैं जैसे कि जंगली हाथियों के किसी झुंड से घिर जाने पर तुम्हारे होंगे। अतएव मानना पड़ेगा कि इस तरह के तमाम शिकार निर्दयता से भरे हुए हैं। परन्तु क्या यह निर्दयता क्षम्य है? इस प्रश्न का उत्तर तुम अपने हृदय से पूछो। तुम कहोगे कि आखेट से बहुत से लाभ होते हैं—स्वास्थ्य ठीक होता है, बल आता है, उत्साह और साहस बढ़ता है, शरीर में फुर्ती तथा दृष्टि में तेजी आती है—और इन लाभों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य शिकार कर सकता है। परन्तु दूसरी तरफ़ जैन, बौद्ध और वैष्णव तथा हिन्दुओं के अन्य सम्प्रदाय हैं जो किसी कारण से भी किसी जीव को पीड़ा नहीं देना चाहते। ऐसी दशा में प्रत्येक को स्वयं विचार कर अपने लिए निश्चय करना चाहिए। इसके बाद यदि तुम्हारा निर्णय आखेट के पक्ष में हो तो तुम्हारा आखेट कम से कम निर्दयता के भाव से नहीं हो, और तुम सुबुक्तगीन की तरह शिकार किए गए जानवर को प्राण-दान देने के लिए तैयार रहो।

एक और तरह का भी शिकार या खेल होता है जो किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं हो सकता। मेरा अभिप्राय रंगभूमि में होने वाली हाथी, भैंसों और मेढ़ों की कुश्ती तथा तीतरों और मुर्गों की लड़ाई से है। यह काम देखने वालों के लिए उतना ही नीचता-जनक है जितना वह लड़ने वाले पशुओं के लिए निर्दयता-

पूर्ण है। मुझे आशा है कि तुम सब इस प्रकार की निर्दयता से सदा के लिए अपना मुँह फेर लोगे।

"He prayeth well, who loveth well
Both man and bird and beast.
He prayeth best, who loveth best
All things both great and small;
For the dear God who loveth us,
He made and loveth all."

ईश्वर और मनुष्य, दोनों ही, उस उदार भारतीय हाथी 'बहादुर' का आदर करेंगे, जो अपने महावत को लेकर युद्ध में गया था। महावत के गोली खाकर मर जाने पर भी वह अपने संचालक की आज्ञा पाए बिना अपने स्थान से नहीं हटता था। भला वह क्या जानता था कि अब उसका स्वामी संसार में नहीं है। उसकी ओर की सेनाएँ डगमगाने लगीं और शत्रु के आगे बढ़ते ही संभ्रम से पीछे हट गईं। परन्तु उदात्त पशु जगह पर स्थिर रहा—अपने स्वामी की आज्ञा बिना वह हिल नहीं सकता था। दृढ़तापूर्वक वह वहाँ खड़ा रहा। बादशाह का झंडा उसके मस्तक पर लहरा रहा था। तितर-बितर हुई हतोत्साह सेना ने यह देखा। वह नए उत्साह से आगे बढ़ी और ऐसे वेग से शत्रु पर टूट पड़ी कि वे उसे रोक न सके। पराजय विजय में बदल गई। युद्ध समाप्त हो गया। परन्तु निर्भीक हाथी ज्यों का त्यों

खड़ा रहा। जिस आवाज़ ने उसे चलने और ठहरने की आज्ञा दी थी वही उसे पीछे भी लौटा सकती थी। तीन दिन और तीन रात तक कोई उसे वहाँ से न हटा सका। तब सैनिकों को महावत के छोटे पुत्र की याद आई जिसे 'बहादुर' बड़ा स्नेह करता था। सौ मील दूर अपने घर से लड़का बुलाया गया और उसे पहचान कर हाथी ने अपना सर झुका दिया। इसके बाद उसने अपने मालिक को चारों तरफ़ देखा और उसे न पाकर वह लड़के की आज्ञा से घर की तरफ़ लौट चला। उसकी झूल अब भी उसके ऊपर लटक रही थी और उसकी कमर में बड़े बड़े घाव हो रहे थे।

आख़िरकार, छावनी आ गई और 'बहादुर' व्यग्रतापूर्वक अपने स्वामी को ढूँढने लगा; परन्तु उसे कहीं न पाकर वह निराशा से चीख पड़ा और अन्त में अपने घावों के कारण व्याकुल होकर लड़के को अपनी सूँड़ में लपेट कर मर गया। उसकी आज्ञाकारिता से युद्ध में विजय हुई। उसका कर्तव्य पूरा हो गया और अब उसका आत्मा विश्राम करता है।

अपना व्याख्यान समाप्त करने से पहले मुझे कुछ शब्द कुत्ते के लिए कहने हैं जो सदा से मनुष्य का सहचर और सहायक रहा है। वुड साहब की Petland Revisited नामक पुस्तक में तुम्हें कुत्तों की कतिपय सच्ची कहानियाँ मिलेंगी जिन्हें पढ़कर, यदि तुम्हारे हृदय पत्थर के नहीं हैं तो, तुम अवश्य रो दोगे।

यह पुस्तक हमारे पुस्तकालय में है। १५६ पृष्ठ पर दी हुई 'मेडोर' की कहानी तुम लोग खास तौर पर पढ़ना।

मुझे विश्वास है कि ऐसा कोई मनुष्य न होगा जिसने कुत्ता पालकर लाभ न उठाया हो। स्वामिभक्ति में हाथी और घोड़ा भी उसकी बराबरी कर सकता है, परन्तु कुत्ते की छोटी आकृति उसे हमारे घरेलू रहन-सहन के विशेष योग्य बनाती है। मनुष्य की अनुग्रह-दृष्टि में उसकी एक खास प्रधानता है जिसका वह इतिहास के आरम्भ से ही अधिकारी है। इस विषय पर हैरो स्कूल के विद्यार्थियों को व्याख्यान देते समय डा० वेलडन ने ओडीसियस के स्वामिभक्त कुत्ते का जिक्र किया था जिसकी कहानी के साथ साथ संसार के काव्य का आरम्भ होता है। इसी प्रकार महाभारत में भी जो शायद 'ओडिसी' से कम पुरानी नहीं है, कथा का अन्त एक कुत्ते की कहानी के साथ होता है। तुम्हें याद होगा कि कौरवों को हराने के बाद जब कि श्री कृष्ण और बलराम पञ्चत्व को प्राप्त हो चुके थे और कलियुग का आरम्भ हो गया था युधिष्ठिर ने भाइयों सहित अपने जीवन के शेष दिन संसार से अलग रह कर बिताने का इरादा किया था। इस अभिप्राय से वे द्रौपदी और एक स्वामिभक्त कुत्ते को ले कर घर से निकल पड़े थे और बहुत से देशों में होते हुए दक्षिण की तरफ और तदनन्तर पश्चिम की तरफ यात्रा करके पुरानी कृष्णपुरी में पहुँचे थे। इसके बाद वे उत्तर की तरफ चले और चलते चलते हिमालय पहुँचे। यहाँ एक एक करके उनकी मृत्यु

हुई—केवल युधिष्ठिर और उनका कुत्ता बच रहे और वहीं हिमालय की शाश्वत उपत्यकाओं में, जहाँ अनन्त शान्ति और विमलता का राज्य है, अनुरक्त कुत्ता अपने स्वामी के साथ रहता हुआ, अन्त में, स्वर्ग के अक्षय सुखों को प्राप्त हुआ।

१४–खेत के फूल।

" कि मैं अत्यन्त निकृष्ट खेत की घास हूँ। मैं
व्यर्थ और क्षुद्र हूँ, किन्तु क्या मैं ईश्वर के
ही हूँ–और क्या वह विश्व का स्वामी नहीं है?

कुञ्ज में बैठी हुई बुलबुल ही उसकी प्रशंसा के

का एक एक काँटा भी मानों जिव्हा बन कर उसकी महत्ता की घोषणा कर रहा है।"

—शेख सादी की 'गुलिस्ताँ' से।

पिछले व्याख्यान में मैंने तुमसे पशु-संसार का जिक्र किया था, जिनसे कि हम इतने अधिक घिरे हुए हैं। आज मैं तुम्हारा ध्यान वनस्पति-वर्ग की अनेकविध सुन्दरता के प्रति आकर्षित करना चाहता हूँ। और इस विषय का विचार खास तौर पर आज इस पावस ऋतु के उपयुक्त ही प्रतीत होता है जब कि तमाम प्रकृति एक नए हरे रङ्ग के आभूषण धारण किए हुए है। इस पावस ऋतु ने जलते हुए ग्रीष्म की तेज धूप के कारण आँखों को थका देनेवाले झुलसे हुए उजाड़ मैदानों के स्थान पर एकाएक मानों किसी अलौकिक शक्ति से, हरे-भरे शस्य-श्यामल खेत लहलहा दिए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों निर्जीव प्रकृति में एक नवजीवन एवं नए उल्लास का संचार हो उठा है। कितना अद्भुत और सुन्दर परिवर्तन है यह !

शायद तुम लोगों में से किसी ने विष्णु भागवत का वह अंश देखा या सुना होगा जहाँ मेघवर्षण को इन्द्र के आशीर्वाद की उपमा दी गई है, जिसके फल-स्वरूप पृथ्वी उर्वर और सम्पन्न हो जाती है। वह वर्णन इस प्रकार है—"ग्रीष्म ने पृथ्वी पर पशुओं और पक्षियों और बेचारे धीरे-धीरे रेंगने वाले कीड़ों पर बहुत दिनों तक स्वेच्छाचारी राज्य किया। इस कारण इन्द्र ने

उस दुराचारी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। बादलों की घड़घड़ाहट मानों युद्ध-वाद्य थी, बिजली उसके कृपाण की चमक, और राजहंस की विशाल पंक्तियाँ मानों उसके लहराते हुए झंडे थीं। मोर तथा मेंढकों की ध्वनि भाट-चारणों द्वारा गाए गए योद्धाओं की प्रशंसा के गीत थे। मेघ की बूँदें मानों उसके बाण थीं। ग्रीष्म घबड़ाकर युद्धक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ और आठ मास के विरह के पश्चात् अपने मेघस्वामी को पाकर पृथ्वी उल्लसित हो उठी।"

चाहे हम गद्य में कहें अथवा पद्य में, वर्षा ऋतु की जितनी प्रशंसा की जाए उतनी ही थोड़ी है। अर्थशास्त्र हमको बतलाता है कि संसार में जो कुछ भी संपत्ति है वह पृथ्वी के उद्भिज्ज पदार्थों के ही कारण है। सोना और चाँदी भी यद्यपि पृथ्वी में से ही प्राप्त होते हैं, किन्तु यदि हमारे पास खाने को कुछ भी नहीं है तो फिर सोने और चाँदी का मूल्य ही क्या? सालाना फ़सलों के ऊपर ही मनुष्य का जीवन निर्भर रहता है। यदि अन्न न हो तो मनुष्य भूखे मर जाएँ। फ़सल मेघ पर निर्भर है। इसी लिए हम मेघ का स्वागत करते हैं।

वर्षा अन्नोत्पत्ति के अतिरिक्त और भी अनेक कार्य करती है। वह भूमि को छाया एवं सौन्दर्य से अलंकृत करती है। घास के छोटे से छोटे पुष्प से लेकर, दीवारों पर लगी हुई हरी काई से लेकर, विशाल बरगद तक—जो यथार्थ में वनस्पति-

संसार का सम्राट् है और भारतवर्ष में अत्यंत विस्तार को प्राप्त होता है—सब को बरसात समान रूप से शोभा प्रदान करती है। बटवृक्ष संसार का सबसे विशालकाय वृक्ष है। संसार का सबसे विस्तृत वटवृक्ष प्रसिद्ध कबीर-बट है जो भड़ोंच से लगभग बारह मील नर्बदा के ऊपर की तरफ़ स्थित है। सौ वर्ष से अधिक हुए, मिस्टर फोर्ब्स ने इस वृक्ष के बारे में लिखा था कि यह क़रीब दो हज़ार फ़ीट के घेरे में फैला हुआ है। और अब तो शायद वह और भी अधिक फैल गया होगा। दस वर्ष पहले मैंने इसके बाहरी घेरे की परिक्रमा की थी, जिसमें पन्द्रह मिनट से भी अधिक लगे थे। इसके विस्तार के हिसाब से देखा जाए तो यह अवश्य ही बहुत प्राचीन वृक्ष सिद्ध होता है। इसके विषय में यह कथा प्रचलित है कि प्रतापी सिकन्दर के सेनापति ने अपने मनुष्यों सहित इसकी छाया में पड़ाव डाला था। इसमें सन्देह हो सकता है कि सिकन्दर की सेना कभी भड़ोच तक पहुँची थी या नहीं, तथापि इस किम्बदन्ती में वृक्ष की आयु का जो संकेत है वह असंभव नहीं है। कितना अद्भुत शिल्प है इस वृक्ष का! और यदि यह बोल सकता होता तो न मालूम कितनी असंख्य कथाएँ पुरातन इतिहास की यह हमको सुना सकता। सचमुच, यदि मनुष्य इसे पवित्र मान कर पूज्य भाव से देखते हैं और इसको प्रकृति का विशाल मन्दिर समझते हैं तो इसमें ,अश्चर्य की कोई भी बात नहीं है।

वट वृक्ष की महत्ता केवल इसकी विशालता के कारण ही नहीं

है; इसका प्रत्येक पत्ता, इसकी प्रत्येक डाल, प्रत्येक जटा, एक आश्चर्यमय रहस्य है। यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि अगर हम इस वटवृक्ष के प्रत्येक भाग को सम्पूर्ण रूप से समझ लें तो हम इस बात के रहस्य को भी समझ लेंगे कि जीवन क्या है, हम यह जान सकेंगे कि ईश्वर और मनुष्य क्या है।

मैं तुमसे एक प्रश्न करूँगा। तुम यह जानते हो कि वृक्षों में पहले पुष्प आते हैं, फिर फल। वटवृक्ष में फल लगते हैं जिनको हम 'टेंट' या 'टेंटा' कहते हैं। परन्तु उसके फूल कहाँ हैं ? क्या तुमने कभी वट के या पीपल के अथवा अंजीर के फूल देखे हैं ? तुम यही कहोगे कि नहीं देखे ? इसका कारण यह है कि टेंट स्वयं पुष्पों का एक समूह है जो एक लम्बे डंठल के ऊपर, भीतर को सिकुड़े हुए एक छाते के रूप में, एक दूसरे से सटे रहते हैं। इसी प्रकार ये फूल, जो अन्य वृक्षों में बाहर की ओर रहते हैं, अंजीर-श्रेणी के वृक्षों में अपने उसी छातानुमा आधार के भीतर बन्द रहते हैं। और यह ही कारण है कि हम उन्हें देख नहीं सकते। यदि तुम एक टेंट को खोल कर देखो तो तुम इन पुष्पों को बड़ी आसानी से देख सकोगे। क्या यह बड़े कुतूहल की बात नहीं है ? इन पुष्पों के विषय में कहने को तो बहुत कुछ है, परन्तु वह फिर कभी देखा जाएगा।

अब कुछ दूसरे पौधों पर विचार करके देखो। जरा कभी टहलते हुए अपने आस-पास के खेतों की तरफ निकलो तो गौर

करना। मेरी इच्छा तुम लोगों के सामने वृक्ष-विज्ञान पर कोई वक्तृता देने की नहीं है, किन्तु इतना मैं अवश्य चाहता हूँ कि तुम लोगों की भावनाओं को मैं उन पदार्थों के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित करूँ जो हमारे चारों ओर वर्तमान हैं। मैं विश्वास करता हूँ तुम इतना जानते होगे कि प्रायः पुष्पों के चार भाग होते हैं। पहले एक प्याली सी होती है, जो हरे रंग की होती है; फिर पत्तों का एक घेरा होता है जिसका रंग हरे रंग से कुछ भिन्न होता है। उसके भीतर सूत-जैसे पतले अनेक डंडे से होते हैं जिन पर पराग रहता है और, अन्त में, केन्द्रस्थ बीज होता है जो मूसल के स्थूल भाग से कुछ कुछ मिलता-जुलता होता है। इस बीज का सिरा कभी-कभी फटा या विभक्त-सा भी दिखाई देता है। यह वर्णन सभी पुष्पों को लागू होता है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ; परन्तु साधारणतया ऐसा ही देखने में आता है।

प्रायः तुमने 'थोर' की झाड़ियाँ देखी होंगी। प्रायः तुमने उनको एक पतली-सी; पत्तों से विहीन, बेल से परिवेष्टित भी देखा होगा, जिसके वृन्त त्रिकोण सन्धियों में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। ये वृन्त अपने सिरों पर छोटे-छोटे तारों-जैसे श्वेत पुष्पों के कारण कैसे सुन्दर मालूम होते हैं। यदि हम इसके किसी भी सन्धि-स्थान पर तोड़ दें तो उसमें से दूध-जैसा गाढ़ा रस निकल पड़ेगा। यह पौधा अपनी धार्मिक और ऐतिहासिक प्राचीनता के कारण अति प्रसिद्ध है; क्योंकि यह ही प्राचीन

आर्यों का सोमरस देने वाला पौधा है, जिसको इतनी प्रशंसा और पूजा वेदों में की गई है। परन्तु इस पतन के समय में हिन्दू लोग इसे देखकर भी नहीं पहचानते। राजकोट में तो यह बहुतायत से मिलता है, परन्तु पड़ोस के स्थानों में भी थोर को झाड़ियों की कमी नहीं है। इसकी जाति के अन्य पौधों के समान इसके भी परदार बीज होते हैं। ये पर यथार्थ में बहुत मुलायम रेशेदार बालों के रूप में होते हैं जो बीजों के साथ जुड़े रहते हैं। इन परों के सहारे बीज हवा में बहुत दूर तक बेलून या गुब्बारे के समान उड़ते हुए चले जाते हैं।

इसके बाद आँकड़े या अकौवे के पौधे पर ग़ौर करो, जो हिमालय से कन्याकुमारी तक सर्वत्र अधिकता से मिलता है। यह भी उसी थोर जाति का है और इसके भी वैसे ही परदार बीज होते हैं। और, यह पौधा तो हम लोगों के लिए एक बड़े ही मनोरञ्जन और कुतूहल की वस्तु है; क्योंकि इसी पौधे की छाया में प्रतापी अकबर का जन्म हुआ था। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि किस प्रकार, हुमायूँ जब अकेला अमरकोट के स्थानों में भटक रहा था तब, उसकी सुन्दर युवा पत्नी ने इसी झाड़ी के नीचे अपना पुत्ररत्न प्रसूत किया था। और, वैसे कहने को, यह एक ऐसी झाड़ी है जिसे रेगिस्तान का ऊँट भी कभी नहीं खाता। 'आँकड़ा' या 'अकौआ' शब्द संस्कृत के 'अर्क' शब्द से बना है जिसका अर्थ 'सूर्य' होता है। निस्सन्देह अपनी किरण जैसी पाँच पंखुड़ियों के कारण ही इसका ऐसा नाम पड़ा होगा।

फिर जरा सूरजबेल को देखो जो कि जुलाई और अगस्त के महीनों में झाड़ियों में लिपटी हुई मिलती है। यह भी आँकड़े की किस्म की ही है और, उसी प्रकार, किरणों की आकृति जैसी पांच पंखुड़ियोंवाले इसके भी फूल होते हैं। हरेपन की आभा लिए हुए इसके पीले फूल इतने छोटे और गौण होते हैं कि, मुझे सन्देह होता है, शायद तुम लोगों ने उनपर कभी ध्यान भी न दिया होगा। उनको देख सकना वास्तव में कठिन है जब तक कि उनको देखने के लिए चेष्टा न की जाए। इसी श्रेणी का पौधा 'रक्तपीपिया' भी है, जिसकी लम्बी और चाबुक की सी आकृति की कोपलें होती हैं तथा घंटी की आकृति के से सुन्दर पुष्प होते हैं। इसी प्रकार, हृदय की सी आकृतिवाले पत्तों से सुशोभित 'चमर दुधेली' और लटकते हुए सघन हरे पुष्पगुच्छों से युक्त 'खरखोदी' भी है। ये तमाम पौधे एक ही वनस्पति-वर्ग के हैं जिसे अंग्रेजी में 'एस्क्लीपियड्स' (Asclepiads) कहते हैं। औषधिजगत् के अधिष्ठाता यूनानी देता ऐस्क्यूलेपियस के नाम के पीछे इस वर्ग का भी ऐसा ही नाम पड़ा है। सोमवृक्ष के समान इन सब के ही परदार बीज होते हैं जो अपने पके हुए केन्द्र से मुक्त होकर छोटे छोटे गुब्बारों के समान हवा में उड़ जाते हैं और अपने जन्मदाता पौधों से बहुत दूर जाकर कहीं उतरते हैं। इस प्रकार अब शायद तुमको इन परदार बीजों का उपयोग मालूम हो सकेगा। प्रकृति में कोई ऐसी एक भी वस्तु नहीं है जिसका उपयोग न होता हो, चाहे हम उस उपयोग को जानते हों अथवा

न जानते हों। इन बीजों में लगे हुए परों का यही उपयोग है कि वे उनको इधर-उधर फैल जाने में सहायता करें, जिस से वे सब के सब एक ही स्थान में न गिर पड़ें और फिर एक ही साथ उग कर तमाम पौधे एक दूसरे को परस्पर अवरुद्ध न कर डालें।

कुछ दूसरे पौधे इस प्रकार के कार्य को और भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा सम्पादित करते हैं। उदाहरणार्थ, किन्हीं पौधों के बीजों का शरीर खुरदुरा या असंख्य बारीक बारीक कांटों से भरा होता है, किन्हीं किन्हीं के बीजों में हजारों मुड़े हुए जैसे तन्तु होते हैं, और किन्हीं बीजों में स्वाभाविक चिपक जाने की शक्ति होती है। 'बीछी' नामक वृक्ष के बीजों के आकार का यही महत्व है कि वे पास से निकलते हुए पशुओं आदि के ऊन या बालों, अथवा चलते हुए आदमियों के कपड़ों से चिपट जाएँ और इस भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँच जाएँ। इसी प्रकार और भी बहुत से अज्ञात या अप्रचलित नाम वाले वृक्षों के बीज वस्त्रादिक में चिपट जाते हैं, जैसे 'अघेड़ा' या 'भीतरा'। बहुत से पौधे अपने फूल-फल की सुन्दरता और मधुरता से अनेक पक्षियों को अपने पास आकर्षित करते हैं; और जब पक्षी फूलों-फलों का उपभोग कर चुकते हैं तो बहुत से बीज इधर उधर फैल जाते हैं, कुछ उनके पंखों में लिपट कर दूर भी पहुँच जाते हैं। अब बताओ, क्या यह एक बड़ी अद्भुत और मनोरंजक बात नहीं है? जब कभी किसी देश की जनसंख्या अधिक हो जाती है तो वहाँ

के लोग दूसरे देशों का प्रवास करते हैं, क्योंकि उन में गमन करने की शक्ति है। परन्तु पौधों को, जिन में गमन की सामर्थ्य नहीं है, अन्यान्य उपायों का ही अवलम्बन करना पड़ता है; और तुम देखते हो कि वे इसे किस खूबी से करते हैं।

यद्यपि एक ही जगह जड़वत् रहने के कारण पौधे चल नहीं सकते, फिर भी अपने अङ्ग संचालन करने की उनमें अद्भुत शक्ति है; मानो उनमें भी मनुष्यों की सी ही इच्छाशक्ति वर्तमान हो। उदाहरण के लिए, 'रिसमन'—छुईमुई की किस्म का एक पौधा—को देखो। इसके मक्खियों के पंख-जैसे छोटे-छोटे पत्ते होते हैं। इसमें इतनी संवेदन-शक्ति है कि ज़रा इसे छुआ नहीं कि सारे के सारे पत्ते मुरझा कर नीचे को लटक जाते हैं, मानों तुमने उसको चोट पहुँचाई हो। यह पौधा Pea जाति का होता है। इसी की भाँति एक दूसरा पौधा भी होता है, जिसका हिन्दुस्तानी नाम मैं नहीं जानता। उसका भी रिसमन की भाँति ही आचरण देखने में आता है। यह छोटा सा पौधा अपने पीले-पीले छोटे फूलों सहित बड़ा सुन्दर मालूम होता है। 'पी' (Pea) जाति का ही एक दूसरा पौधा, जिसे अंग्रेजी में Desmodium Gyrans कहते हैं, धूप में अपने पत्तों को इधर-उधर इस प्रकार फटफटाने लगता है मानो घबड़ाया हुआ सा हो। यह पौधा भारतवर्ष में शायद नहीं पाया जाता; परन्तु मैंने इसे सीलोन में देखा था—बड़ा ही विचित्र पौधा था। 'केक्टस'

के नागफन का एक प्रकार—परागों को यदि छूओ तो वे भी इसी प्रकार सहसा मुरझा जाएँगे, जैसे वे शरमा गए हों। फिर ज़रा उस छोटे सुन्दर पौधे Sundew पर ध्यान दो जो भारतवर्ष तथा इंग्लैंड की पहाड़ियों पर प्रायः उत्पन्न होता है। इसके पत्तों के ऊपरी भाग पर बहुत से बारीक रेशे चिपके हुए से रहते हैं और जब कभी मक्खियाँ इन रेशों पर बैठती हैं तब पत्ते मुड़ कर बन्द हो जाते हैं और जब तक मक्खी मर न जाए तब तक उसे नहीं छोड़ते। मक्खी के शरीर के अधिकांश से ही इस पौधे को पुष्टि होती है। इस प्रकार यह सुन्दर और कोमल पौधा वास्तव में बड़ा निर्दय और धोखेबाज़ है। यह एक जन्तुभक्षी पौधा है।

इन महत्त्वपूर्ण बातों से यही सिद्ध होता है कि पौधों में भी जीवधारियों की सी इच्छाशक्ति होती है। 'प्रतीत होता है' मैंने इसलिए कहा है कि अभी तक पौधों की इस क्रिया का पूर्णरूप से समाधान नहीं किया जा सका है। तथापि, यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि पौधों के भी शिराओं से युक्त अवयव होते हैं जो जन्तुओं के अवयवों की भाँति क्षुब्ध भी हो जाते हैं तथा फिर शान्त भी हो सकते हैं। यदि थोड़े से अफ़ीम के जल को किसी संवेदनाशील पौधे के ऊपर छिड़क दिया जाये तो वह निर्जीव-सा प्रतीत होने लगेगा, उसकी संवेदनाशक्ति कुछ समय के लिए मारी जाएगी। क्या यह एक बड़ी विचित्र बात नहीं है?

इसी प्रकार की और भी सैकड़ों अद्भुत बातें वनस्पति-संसार में दृष्टिगोचर होती हैं, यदि इन्हें देखने के लिये केवल हमारे पास आँखें हों। उदाहरण के लिए, जिन लोगों ने देखा है वे जानते हैं कि सभी पुष्प दिन में नहीं खिलते; प्रत्येक पुष्प के विकसित होने का अपना एक निश्चित समय होता है। कोई दिन में जल्दी ही खिलता है तो कोई देर से। चन्द्रबेल तो रात में ही विकसित होती है, दिन में तो वह कभी खिलती ही नहीं। किसी किसी देश के वनस्पति-वैज्ञानिकों ने तो पुष्पघड़ियों (Flower-clocks) तक का आविष्कार किया है, जिनके द्वारा जिस समय जो फूल विकसित होता है उसके अनुसार समय निश्चित कर लिया जाता है। प्रत्येक घंटे का एक एक पुष्प होता है। इस प्रकार यदि कल पुर्जों वाली आधुनिक घड़ियों का आविष्कार न हुआ होता तो हमें समय मालूम करने के लिए शायद उपवनों के प्रति ही अधिक ध्यान देना पड़ता। इसी तरह और भी हजारों तरीक़े हैं जिनके द्वारा पौधों का उपयोग होता है। आभूषा और सजावट के तो वे एक प्रधान अङ्ग हैं ही।

हाँ, पौधों के उपयोग असंख्य हैं जिनकी पूरी प्रशंसा कर सकना हमारी शक्ति के परे है। तुम जानते हो कि भोजन के अतिरिक्त हमारी समस्त ओषधियाँ भी, जिनमें कुनैन (quinine) भी शामिल है, पौधों से ही प्राप्त होती हैं। लकड़ी और रस्सियों के लिए तथा हमारी नित्य की बहुत सी आवश्यकताओं के लिए,

पौधे कितने काम मे आते हैं। नारियल के वृक्ष को ही लेलो। खजूर के वृक्ष को भी देखो कि वह अकेला ही किन किन कामों में आता है। अपने निकट रहनेवालों को वह दूध और शराब देता है। उसकी गुठली उनके भोजन का काम देती हैं। उनकी झोपड़ियों की दीवारें इसकी टहनियों से और छत पत्तों से बनाई जाती हैं। उसके पत्ते सूर्य की तीक्ष्णता से रक्षा करने के लिए छाते तथा हैट (छज्जेदार टोपी) का काम देते हैं। इसके तन्तुओं से वस्त्र, चटाइयाँ तथा मजबूत रस्से जो पानी में कभी नहीं गलते, बनाए जाते हैं। नारियल का तेल तो दीपक जलाने में, और भोजन बनाने के लिए, अत्यन्त ही उपयोगी है।

यह विषय मुझे बहुत ही दूर ले जा रहा है और मैं नहीं जानता कि कहाँ विश्राम लूँ। मैं इस विषय पर घंटों बोल सकता हूँ, क्योंकि यह विषय बहुत विस्तृत है। परन्तु मेरे पास समय थोड़ा ही है। अपने व्याख्यान को समाप्त करने से पहले मैं तुमको केवल थोड़े से उदाहरण और दूँगा। क्या तुमने कभी द्राक्षाश्रेणी की लताओं की शोभा देखी है—जैसे Cissus Carnosa जो हर कहीं पैदा होती हैं, अथवा धनवेल (Vitis Indica) जिसमें बड़े मनोहर पत्ते और अंगूर-सदृश छोटे-छोटे फलों के गुच्छे लगते हैं—या फिर, वह मुग्धकारी पद्मलता 'कजली' जिसे अंग्रेजी में Phalangium tuberosum कहते हैं और जिसके 'अंगूर-जैसे गुच्छे' जड़ की गाँठ के आस पास,

ज़मीन के भीतर, फैले रहते हैं? और बछनाग (Gloriosa superba) की तो प्रशंसा ही क्या की जाए। इसके मनोरम पुष्प एवं एक दूसरे से आलिंगन करते हुए पत्ते कितने भले प्रतीत होते हैं। इनमें अपने रंग को परिवर्तित करने की विचित्र शक्ति होती है, जो आरम्भ में तो पीले रहते हैं, फिर नारंगिया हो जाते हैं, और नारंगिया से लाल। एक प्रकार का गुलाब भी होता है जो अपना रंग बदला करता है; और इसी भाँति लाल चमेली भी पहले सुफ़ेद, फिर गुलाबी, और तदुपरान्त लाल हो जाया करती है। समाच्छादक जाति की लताओं में 'फ़ाद' (Rivea ornata) और 'नसोतर' (Ipomoea turpethum) उदाहरणीय हैं। अपने शोभायुक्त बड़े बड़े फूलों सहित फ़ाद की बेल भारी-भारी वृक्षों की चोटियों पर चढ़ जाती है और उन्हें आच्छादित कर लेती है। इसी तरह नसोतर भी वृक्षों पर फैलती है, और इससे दवाइयाँ भी बनाई जाती हैं। इसका यह नाम 'नसोत्री' या 'नसोतर' इस के त्रिकोणाकार डंठलों के कारण, जिनमें कि तीन शिराएँ या पर-जैसी उर्ध्व रज्जुएँ होती हैं, पड़ा है। इसी जाति की, 'समुद्रबेल' (Argyreia speciosa या elephant creeper) भी दवाइयों के काम में आती हैं। इसकी लम्बी लम्बी ऊर्ध्वगामिनी टहनियों को वनस्पतिशास्त्रवेत्ता 'lianas" कहते हैं और उनका देशी नाम 'समदरसूल' है। इसके सुन्दर पुष्प बैंगनी रंग के होते हैं।

अब बड़े बड़े पौधों या वृक्षों पर चढ़ने वाली लताओं से हट

कर जरा छोटी लतिकाओं पर भी दृष्टिपात करो। कोमल बालदार पत्तों के झूलने में ताराओं के समान चमकते हुए उज्ज्वल एवं नीले छोटे पुष्पों से शोभायमान 'रुहखड़ी' कभी देखी है? उसके विनम्र फूल, जैसे, लजाए हुए से रहते हों। उस दिन मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर सर एलफ़िन्स्टन ग्रांट डफ़ ने इसकी अत्यन्त प्रशंसा की थी और अंग्रेजी पुष्प Speedwell से इसकी तुलना की थी। इसके बालदार पत्तों के कारण ही शायद इसका नाम 'रुहखड़ी' पड़ा है। वृक्षविज्ञानशास्त्री इसे Evolvus hirsutus कहते हैं, क्योंकि यह जमीन पर ही फैलती है, आच्छादिक (Convulvus) जाति की बेलों की तरह वृक्षों और पौधों के चारों ओर लिपटती नहीं। एक और छोटी सी जड़ी होती है जिसे इङ्गलैन्ड में 'पिम्परनेल' Pimpernel अर्थात् Anagallis arvensis कहते हैं। इसके हिन्दुस्तानी नाम को मुझे पता नहीं। शीत ऋतु में यह प्रायः उपवनों में लगाई जाती है और इंगलिस्तान में बहुतायत से प्राप्त होती है। जब मैं इसे जनवरी और फ़रवरी के महीनों में फूलों से लदी हुई देखता हूँ तो मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है। यहाँ पैदा होनेवाली और इङ्गलैन्ड में पैदा होनेवाली इस बेल में इतना ही अन्तर है कि यहाँ तो यह लाल रङ्ग की होती है और इङ्गलैन्ड में नीले रङ्ग की। दूसरी बेलों की अपेक्षा इसमें कुछ अधिक विश्वबन्धुत्व है, अर्थात् संसार में यह सर्वत्र ही पाई जाती है, जैसे कि पक्षियों में 'गौरैया' या 'चटक' है। इस बेल की सरल पहचान यह है कि जैसे ही इसके पुष्प मुरझाते

हैं वैसे ही उन पुष्पों के डंठल भीतर की ओर, नीचे को, संकुचित होने लगते हैं। परन्तु अब मैं इस विषय को और अधिक विस्तार नहीं दूँगा।

पर, क्या तुम बता सकते हो कि आज मैंने वनस्पति-जगत् पर यह लम्बा-चौड़ा व्याख्यान तुमको क्यों दिया है? इसलिए कि मैं चाहता हूँ कि तुम लोग प्रकृति के इस प्रकार के, एवं अन्य, सुन्दर कार्य-कलापों में दिलचस्पी ले सको। मेरा विश्वास है कि ऐसे विषयों के अनुशीलन से तुम अपने जीवन के आनन्द की अभिवृद्धि कर सकोगे। यह अनुशीलन तुम्हारे निर्दोष एवं मधुर मन-बहलाव का कारण तो बनेगा ही, परन्तु वह तुमको क्षुद्र विचारों से भी दूर हटाएगा और अधिक ऊँचा उठाएगा—उतना ही ऊँचा जितनी ऊँची कि प्रकृति है और जितना ऊँचा उस प्रकृति का निर्माता परमेश्वर है। प्रकृति के सम्बन्ध में महाकवि वड्र्स्वर्थ ने कहा है—

"'Tis her privilege,
Through all the years of this our life, to lead
From joy to joy; for she can so inform
The mind that is within us, so impress
With quietness and beauty, and so feed
With lofty thoughts, that neither evil tongues,
Rash judgments, nor the sneers of selfish men,
Nor greetings where no kindness is, nor all

The dreary intercourse of daily life,
Shall e'er prevail *against* us, or disturb
Our cheerful faith that all that we *behold*
Is full of blessing."*

अर्थात्, प्रकृति मनुष्य को उसके सम्पूर्ण जीवन में आनन्द के प्रति प्रवृत्त करना अपना अधिकार समझती है। वह हमारे अभ्यन्तर को सत्य और सौन्दर्य का साक्षात्कार कराती है। हमारे हृदय को सत्य और सौन्दर्य से ओत-प्रोत कर देती है—उसको उन्नत भावों से पूर्ण करती है—जिस से संसार की निन्दा, पक्षपात-पूर्णता, स्वार्थी मनुष्यों के व्यंग्य, स्नेह-हीन शुष्क प्रशंसा तथा नित्यप्रति जीवन की विभीषिकाएँ हमारा कुछ भी न बिगाड़ सकें और वे हमारे इस पूर्ण विश्वास को, कि जो कुछ भी हम देखते हैं वह निर्दोष आनन्द से परिपूर्ण है, जरा भी विचलित न कर सकें।

इस प्रकार वर्ड्स्वर्थ ने प्रकृति के विषय में यह कितना सुन्दर लिखा है। उसके शब्द केवल सुन्दर ही नहीं, सत्यता से

---

* यहाँ इस कविता का अभिप्रायमात्र समझाने के लिए केवल भावार्थ ही दिया गया है, शब्दार्थ नहीं। वर्ड्स्वर्थ जैसे महाकवि की कविता का शब्दशः अनुवाद करना भी कठिन है और भाव की हानि की आशंका भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त अपरिपक्व बुद्धि के विद्यार्थियों के लिए ऐसा करना अनुपयोगी भी मालूम हुआ। वैसे तो इस पूरे व्याख्यान में ही, नामों और वर्णनों की पारिभाषिकता के कारण, भावानुवाद की ही चेष्टा की गई है।

भी परिपूर्ण हैं। उसने एक स्थान पर कहा है कि प्रकृति अपने से प्रेम करने वाले व्यक्ति को कभी धोखा नहीं देती। और, जिस समय तुम्हारे विचार प्रकृति के निकट रहेंगे तो, मेरा तो पूर्ण विश्वास है, वे ईश्वर से भी अधिक दूर नहीं रह सकते। ‡

---

‡ बहुत से पुष्पों और पौधों का तो शायद अभी तक नामकरण ही नहीं हुआ है और बहुतों के नाम अप्रचलित हैं। कुछ पौधों के नाम एक स्थान पर एक हैं और दूसरे स्थान पर दूसरे। अतः नाम का विशेष महत्त्व नहीं। इस अनुवाद को यहाँ देने का उद्देश्य वही है जो व्याख्याता ने अपने व्याख्यान के अन्तिम दो पैरों में स्पष्ट किया है।

१५—खेल-कूद।

"Archery, cricket, gun and fishing rod, horse and boat, are all educators, liberalisers; and—provided only the boy has resources, and is of a noble and ingenuous strain—these will not serve him less than books.. ....Provided always the boy is teachable, football, cricket, archery, swimm-

ing, skating, climbing, fencing, riding, are lessons in the art of power, which it is his main business to learn;—riding, specially, of which Lord Herbert of Cherbury said, 'A good rider on a good horse is as much above himself and others as the world can make him."

Emerson's "Conduct of Life."

[इसी भाँति—"व्यायामपुष्टगात्रस्य बुद्धितेजोयशोबलम् ।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात् व्यायाममाचरेत् ॥

अर्थात् , जिस मनुष्य ने व्यायाम द्वारा अपना शरीर पुष्ट कर लिया है उसका बल, तेज, बुद्धि, यश सब कुछ बढ़ते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को व्यायाम करना चाहिए।]

शुरू शुरू में, हमारी शिक्षा-पद्धति में, किसी बात की इतनी तीव्र समालोचना नहीं हुई थी जितनी कि, जहाँ तक मुझे याद है, खेल-कूद के प्रति हम लोगों के उत्साह की। जनता का यह पूर्ण विश्वास था कि विद्यालय एक पढ़ने-लिखने का ही स्थान है; इस लिए केवलमात्र अध्ययन ही वहाँ होना चाहिए और खेल-कूद में जो समय लगाया जाएगा वह उसका दुरुपयोगमात्र ही होगा। मेरी धारणा है कि इस प्रकार के विचारों का कुछ अंश मनुष्यों के मस्तिष्क में अब भी वर्तमान है। परन्तु मुझे यह देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है कि साधारण तौर से अब स्कूलों और

कालेजों के भीतर, खुली हवा में, खेल-कूद करने, और व्यायाम आदि, के प्रति लोगों का ध्यान पहले की अपेक्षा अधिक जाने लगा है। गत पन्द्रह वर्षों में भारत में इस सम्बन्ध में एक विशेष परिवर्तन हुआ है; और यह परिवर्तन, मेरे विचार में, जनता के लिए बड़ा श्रेयस्कर है।

इसका एक कारण मालूम होता है। हममें से कोई भी शायद ऐसा नहीं समझता होगा कि केवल बुद्धि ही बुद्धि का विकास करके मनुष्य वह सब कुछ हो सकता है जो कि उसे होना चाहिए। कोई भी शायद यह नहीं सोचता कि केवल मस्तिष्क की ही शिक्षा से मनुष्य की सारी शिक्षा हो जाती है। परन्तु यदि यह सोचा भी जा सके तो भी हमारी मस्तिष्क-शक्ति का हमारी शारीरिक शक्ति से इतना निकट सम्बन्ध है कि हमारी मांसपेशियों की समुचित गठन हमारे मानसिक विकास के लिए एक अति आवश्यक सहायतास्वरूप सिद्ध होती है।

मनुष्य बहुत से तत्वों और अवयवों का समूह-रूप है, जिनमें बुद्धितत्व या मस्तिष्क की निस्सन्देह प्रधानता है। परन्तु सब तत्वों का यह समूह ही, अकेला बुद्धितत्व ही नहीं, मनुष्य के चरित्र का निर्माण करता है। और, चरित्र की पूर्णता पर ही मनुष्य की पूर्णता निर्भर है। इसलिए शिक्षा का अन्तिम ध्येय यही है कि मनुष्य नेक और बुद्धिमान् बने, अपने शरीर के प्रत्येक अवयव का विकास करे—जिससे सम्पूर्ण शरीर एक सी उन्नति को प्राप्त

कर सके। और, हमारा विश्वास है कि ऐसे खेल-कूद—जिनमें बुद्धि का, बल का, शक्ति का उपयोग होता हो—इस ध्येय की पूर्ति में अत्यधिक सहयोग देंगे। क्यों कि शरीर के साथ ही साथ वे मस्तिष्क को एवं चरित्र को दृढ़ बनाते हैं।

और, वास्तव में, संसार के आदिम काल में इस बात की सत्यता अच्छी तरह समझ ली गई थी। उस समय के देवता, तथा अत्यन्त प्राचीन काल के महापुरुष, अपनी मानसिक उन्नति में ही पूर्ण नहीं थे, शारीरिक विकास और सौन्दर्य में भी वे पूर्णता को प्राप्त थे। राम केवल महान् और श्रेष्ठ ही नहीं है—वह एक बलशाली धनुर्धर भी हैं जिनके बाण कभी व्यर्थ नहीं जाते। पांचों पांडव, जिनमें प्रत्येक अपने अपने एक विशेष गुण से भी युक्त था—यथा युधिष्ठिर दया से, अर्जुन धनुर्विद्या से, भीम गदाकौशल से, सहदेव ज्योतिष-शास्त्र से और नकुल पशुविज्ञान से—विशेषत: अपने बल और मल्लविद्या की निपुणता के कारण ही प्रसिद्ध थे। फारस के प्राचीन निवासियों ने, ऐसा कहा जाता है, अपनी शिक्षा के मुख्य विषयों को संक्षेपत: तीन भागों में विभक्त किया था–(१) धनुर्विद्या, (२) अश्वसंचालन और (३) सत्यभाषण। और, इसी प्रकार तुमको अपनी प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में बहुत से ऐसे उपदेश मिलेंगे जो शारीरिक व्यायाम को शक्ति, साहस तथा धैर्य का दाता बतलाते हैं। व्यायाम पाचन-क्रिया को उत्तेजित करता है और ऐसे बहुत से रोगों को नष्ट करता है जो व्यायाम न करने वाले मनुष्य को अपना निवासस्थान बना लेते हैं।

धनुर्विद्या को प्राचीन काल में एक बड़ा हितकर व्यायाम समझा जाता था। इसका ज़िक्र आर्य लोगों के वीर-काव्यों में और फ़ारस तथा यूनान देश के निवासियों के साहित्य में बहुत कुछ किया गया है। परन्तु आज वह विद्या अनुपयुक्त सी हो गई है, क्योंकि बाण अब युद्ध का शस्त्र नहीं रहा। किन्तु अश्वविद्या का महत्व, जिसका प्रचार प्राचीन काल में भी अत्यधिक था, आज भी जैसा का तैसा ही है। और मुझे आशा है कि इसका अभ्यास अन्त तक ज्यों का त्यों रहेगा। पर, यदि मनुष्य पैर से चलने के अभ्यास को छोड़ कर बाइसिकिल, ट्राइसिकिल आदि पर चढ़ने का अभ्यास करने लगेंगे तो उनकी शक्ति का बहुत ज्यादा ह्रास हो जाने की संभावना है। अकेले करने के व्यायामों में सब से श्रेष्ठ व्यायाम घोड़े की सवारी ही है, परन्तु वास्तव में, इसे एका-की व्यायाम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घोड़ा भी तो एक साथी ही है। अश्व के और आरोही के बीच में एक सहानुभूति सी हो जाती है जो, मेरे विचार में, दोनों ही के लिए उपयोगी है। एक खुले मैदान में अश्वारोहण का अभ्यास करना शरीर को बिना थकावट दिए हमें स्फूर्ति तो प्रदान करता ही है; परन्तु, इसके अतिरिक्त, शीघ्रतापूर्वक आत्मसंचालन में जो उपयोगिता है वह भी हमें इस अभ्यास से प्राप्त हो जाती है। जिस मनुष्य को इस व्यायामका ज़रा भी आनन्द मिल चुका है वह उसका और भी अधिक अभ्यास करेगा। अश्वारोही ड्रिल (क़वायद) में इससे भी अधिक लाभ हैं। इस तरह की क़वायद में हम मिल कर कार्य करने की

उपयोगिता से परिचित होते हैं। इससे हमारे साहस और शक्ति का विकास होता है। शारीरिक स्फूर्ति एवं नेत्रों की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति में अभिवृद्धि होती है। प्राचीन भारत का यही व्यायाम है।

इसी प्रकार का एक खेल पोलो भी है। इसमें निर्भीक स्फूर्ति की एवं, साथ ही, शान्त तथा सूक्ष्म विचार-शक्ति की अत्यधिक आवश्यकता रहती है। प्राचीन समय के भारतवर्ष में अखाड़े-बाजी के कौशलों के प्रति—जैसे मल्लविद्या या मुद्‌गरों का निपुण संचालन—अधिक ध्यान दिया जाता था। उदाहरण के लिए, तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि किस प्रकार पांडव और कौरव अखाड़े के कौशलों में दक्ष थे—किस प्रकार पांडव कौरवों की अपेक्षा इस विद्या में एवं मानसिक महत्ता में अधिक कुशल थे। मांसपेशियों को कठोर बनाने के में तो इन व्यायामों का कोई सानी है ही नहीं।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत अगर प्राचीन भारत की ही व्यायाम-पद्धति का अनुसरण करे—विशेष करके प्राचीन राजपूतों की व्यायाम-पद्धति का—तो उसे पाश्चात्य देशों से इस विषय में अधिक सीखने की कुछ आवश्यकता नहीं रहेगी। लेकिन आर्यों का वह बल लुप्त हो गया, और साथ ही प्राचीन शारीरिक खेल-कूद भी। यह बात मैंने केवल यह बताने के लिए तुम से कही है कि खुले मैदानों के खेल कूदों के सम्बन्ध में हमारी जो प्रोत्साहन-प्रवृत्ति है उसमें प्राचीन उन्नति-शील भारत के राष्ट्रीय विचारों तथा संस्कृति के प्रति विरोध-जैसा कुछ भी

नहीं है। जिस भाव को लेकर प्राचीन आर्यों के खेल-कूद हुआ करते थे उसी भाव को लेकर आज कल के पाश्चात्य खेल भी खेले जाते हैं।

एक शिक्षा-विशेषज्ञ का कथन है कि "अध्ययन के साथ खेल-कूद की अदल-बदल में दो प्रकार के लाभ हैं। पहला—शरीर की दृढ़ता, और दूसरा—रुचि के अनुरूप आमोद-प्रमोद। परिश्रम-पूर्ण कार्य के बाद किसी मन-बहलाव के, अथवा अपनी अभिरुचि वाले आमोद-प्रमोद के, कार्य में प्रवेश करना ही जीवन की सफलता है। बन्धन से स्वतन्त्रता में, अन्धकार से प्रकाश में, नीरसता से सरसता में, व्यय से प्राप्ति में, प्रवेश करना मानों दुःख का सुख से विनिमय करना है। यही, वास्तव में, हमारे परिश्रम का उपयुक्त उपहार है, और यही आगे के परिश्रम और सहन-शीलता के लिए शरीर को स्फूर्तिमय बनाने का प्रधान साधन भी है।"

खेल-कूद मानसिक शान्ति प्रदान करने के कारण रुचिपूर्ण तो होते ही हैं, परन्तु; इसके अतिरिक्त वे हमें बहुत सी उन बातों की भी शिक्षा देते हैं जो केवल-मात्र मानसिक श्रम से उपलब्ध नहीं हो सकतीं। मैं अभी कह चुका हूँ कि किस प्रकार पोलो के खेल के लिए संतुलित मन, दृढ़ हस्तलाघव और सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है। इन गुणों के साथ साथ हम न्यायभाव की ओर गणना कर सकते हैं, जिसकी उपलब्धि खेल-कूद में ही और कामों की अपेक्षा अधिक हो सकती है शक्ति-प्रदर्शन के खेलों में

धोखेबाज़ी को स्थान ही कहाँ ? यदि उनमें भी धोखेबाज़ी हो तो वे खेल ही कहाँ रहे ? पूर्ण निःस्वार्थता, दोनों दलों के साथ निष्पक्ष न्याय की अनिवार्यता, के बिना कोई भी खेल नहीं खेला जा सकता। यही कारण है कि क्रिकेट के खेल में मध्यस्थ (umpire) से झगड़ा करने की किसी को भी आज्ञा नहीं है। चाहे हम अपने भाग्यकी कठोरता के सम्बन्ध में कुछ भी सोचें, परन्तु हमारे लिए यह बहुत ही श्रेयस्कर बात है कि हम अपनी सम्मति को दूसरे व्यक्ति अर्थात् अम्पायर (umpire) के अधीन समझें। मेरे विचार में, प्रायः इसी कारण से छोटे बच्चों के खेल में निरीक्षक की अधिक आवश्यकता रहती है। किन्तु युवकों के खेल में इसकी उतनी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे अपेक्षाकृत अधिक विवेकी होते हैं और उनमें थोड़ा चरित्र-बल भी रहता है । छोटे बच्चे कभी कभी चालबाज़ी कर जाने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते, और जब कभी खेल उनके विपरीत जाने लगता है तो वे अपने मन को ठिकाने रखने में असमर्थ हो जाते हैं। परिणामतः वे आपस में लड़ने-झगड़ने लगते हैं और खेल का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है ।

इस प्रकार, क्रीड़ा-कौतुक का सबसे प्रधान गुण यह है कि वह हमें स्वभाव को शान्त रखने का पाठ सिखाता है; क्योंकि जहाँ स्वभाव बिगड़ा वहीं खेल नष्ट हुआ। इस बात को हम क्रिकेट के खेल के अनुभव से अच्छी तरह समझ सकते हैं। विरोधी

परिस्थितियों में सब से श्रेष्ठ मार्ग यही है कि भरसक प्रयत्न किया जाए तथा मन में आशा और शान्ति रक्खी जाए।— खिलाड़ी कभी अशान्त न बने एवं कभी निराशा को पास न फटकने दे। Tom Brown's School-days नाम की एक अँग्रेज़ी पुस्तक में, जिसमें ए. बी. स्कूल के (इस नामके एक स्कूल का उसमें हाल दिया गया है) जीवन के विषय में लिखा गया है, क्रिकेट खेल का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। उसका एक अंश मैं तुम लोगों के सामने रखता हूं। वहाँ एक ऐसे सुन्दर दृश्य का वर्णन है जिससे हम सभी परिचित हैं।

ग्यारह खिलाडियों का दल, टॉम ब्रॉउन जिसका नेता (Captain) है, मैदान में आते हैं। शक्तिशाली विपक्षी-दल का एक खिलाड़ी भी हाथ में बल्ला लेकर आता है और खेल का आरम्भ होता है। खिलाड़ी की प्रहार-क्रिया ("हिट" hit लगाना) बड़ी अद्भुत है और बिजली की तेज़ी के समान उसकी दौड़ने की शक्ति है। विकेट (खिलाड़ी के पीछे भूमि में गड़े हुए तीन डंडे, जिनमें से किसी में भी गेंद लग जाने से खिलाड़ी "आउट" out समझा जाता है) के गिर पड़ने की अवस्था के अतिरिक्त और किसी समय वह अपनी जगह ठहरा ही नहीं रह सकता। खिलाने वाले दल को अच्छी तरह पिदाना, भगाना, वह खूब जानता है। अपने पक्ष की दृढ़ता और विजय के लिये जो कुछ भी किया जा सकता है उस सब में वह बहुत दक्ष है 'स्कोर'

धोखेबाज़ी को स्थान ही कहाँ ? यदि उनमें भी धोखेबाज़ी हो तो वे खेल ही कहाँ रहे ? पूर्ण निःस्वार्थता, दोनों दलों के साथ निष्पक्ष न्याय की अनिवार्यता, के बिना कोई भी खेल नहीं खेला जा सकता। यही कारण है कि क्रिकेट के खेल में मध्यस्थ (umpire) से झगड़ा करने की किसी को भी आज्ञा नहीं है। चाहे हम अपने भाग्यकी कठोरता के सम्बन्ध में कुछ भी सोचें, परन्तु हमारे लिए यह बहुत ही श्रेयस्कर बात है कि हम अपनी सम्मति को दूसरे व्यक्ति अर्थात् अम्पायर (umpire) के अधीन समझें। मेरे विचार में, प्रायः इसी कारण से छोटे बच्चों के खेल मे निरीक्षक की अधिक आवश्यकता रहती है। किन्तु युवकों के खेल में इसकी उतनी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे अपेक्षाकृत अधिक विवेकी होते हैं और उनमें थोड़ा चरित्र-बल भी रहता है । छोटे बच्चे कभी कभी चालबाज़ी कर जाने के लोभ का संवरण नहीं कर पाते, और जब कभी खेल उनके विपरीत जाने लगता है तो वे अपने मन को ठिकाने रखने में असमर्थ हो जाते हैं। परिणामतः वे आपस में लड़ने-झगड़ने लगते हैं और खेल का सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है।

इस प्रकार, क्रीड़ा-कौतुक का सबसे प्रधान गुण यह है कि वह हमें स्वभाव को शान्त रखने का पाठ सिखाता है; क्योंकि जहाँ स्वभाव बिगड़ा वहीं खेल नष्ट हुआ। इस बात को हम क्रिकेट के खेल के अनुभव से अच्छी तरह समझ सकते हैं। विरोधी

परिस्थितियों में सब से श्रेष्ठ मार्ग यही है कि भरसक प्रयत्न किया जाए तथा मन में आशा और शान्ति रक्खी जाए।—खिलाड़ी कभी अशान्त न बने एवं कभी निराशा को पास न फटकने दे। Tom Brown's School-days नाम की एक अँग्रेजी पुस्तक में, जिसमें ए. बी. स्कूल के (इस नामके एक स्कूल का उसमें हाल दिया गया है) जीवन के विषय में लिखा गया है, क्रिकेट खेल का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। उसका एक अंश में तुम लोगों के सामने रखता हूं। वहाँ एक ऐसे सुन्दर दृश्य का वर्णन है जिससे हम सभी परिचित हैं।

ग्यारह खिलाड़ियों का दल, टॉम ब्राउन जिसका नेता (Captain) है, मैदान में आते हैं। शक्तिशाली विपक्षी-दल का एक खिलाड़ी भी हाथ में बल्ला लेकर आता है और खेल का आरम्भ होता है। खिलाड़ी की प्रहार-क्रिया ("हिट" hit लगाना) बड़ी अद्भुत है और बिजली की तेजी के समान उसकी दौड़ने की शक्ति है। विकेट (खिलाड़ी के पीछे भूमि में गड़े हुए तीन डंडे, जिनमें से किसी में भी गेंद लग जाने से खिलाड़ी "आउट" out समझा जाता है) के गिर पड़ने की अवस्था के अतिरिक्त और किसी समय वह अपनी जगह ठहरा ही नहीं रह सकता। खिलाने वाले दल को अच्छी तरह पिदाना, भगाना, वह खूब जानता है। अपने पक्ष की दृढ़ता और विजय के लिये जो कुछ भी किया जा सकता है उस सब में वह बहुत दक्ष है······'स्कोर'

(बनाए हुए 'रनों' runs की संख्या) धीरे धीरे पचास तक पहुंच जाती है और खिलानेवाले घबड़ाए हुए से देखने लगते हैं। दर्शकों की भी भीड़ लगी हुई थी और वे सब कौतूहल से आंखें फाड़ फाड़ कर चुपचाप देख रहे हैं। गेंद खिलाड़ी के बल्ले की चोट खाकर आसमान में उड़ती उड़ती हुई मैदान की सीमा के बाहर जाकर गिरती है। खिलानेवालों को एक क्षण के लिए चैन नहीं, गेंद उनके हाथों की पकड़ में नहीं आती।

परन्तु, साथ ही, क्रिकेट का खेल तो दैवयोगों (chances) का भी खेल है और इस खेल की अधिष्ठात्री देवी चतुर से चतुर खिलाड़ी को भी अपने विनोद में "आउट्" करा देती है। युवक जॉनसन, जो गेंद फेंकने का कार्य कर रहा है, पागलसा बन कर गेंद को निशाने से बचा कर फेंकता है। लेकिन खिलाड़ी उसको भी खाली नहीं जाने देना चाहता, गेंद उसके बल्ले के सिरे से लग कर वेग के साथ उछलती है। उसी समय, जब कि गेंद चक्कर खाती हुई, सनसनाती हुई, भूमि से केवल तीन फीट की ऊँचाई पर वेग से जा रही है, एक खिलानेवाला लपकता है और सब कुछ भूल कर अपना बायां हाथ उसके सामने कर देता है। गेंद मानो उसकी उंगुलियों की टोकरी में चिपकसी जाती है। "कैच" (catch अर्थात् आती हुई गेंद को हाथ से पकड़ लेना) करने वाले को स्वयं आश्चर्य होता है और दर्शक उन्मत्तों की भांति आनन्द से चिल्ला उठते हैं, क्योंकि वर्षों से किसी ने ऐसा क्रिकेट नहीं देखा था। "गजब का क्रिकेट है" कप्तान कह उठा

और संतोष के साथ एक लम्बी सांस लेकर क्षण भर को विकेट के पास पसर गया। उसे सुख हुआ कि एक बड़ा संकट दूर हो गया।

बताओ, जिस समय कोई अच्छा खिलाड़ी खेलता होता है और हम सब उसके विकट खेल से घबड़ा उठते हैं तो क्या हम लोगों को भी, उसके कैच या या विकेट द्वारा "आउट्" होने पर ऐसी ही खुशी नहीं होती? और क्या हम सब ही क्रिकेट के द्वारा उस उत्तेजनापूर्ण सरल आनन्द को यहाँ भी प्राप्त नहीं कर सकते; क्यों मनुष्य स्वभाव तो सर्वत्र ही एक सा है—रग्वी में भी और भारतवर्ष में भी।

बाद में रग्वी के एक मास्टर ने टॉम ब्रॉउन से कहा, "कितना श्रेष्ठ खेल है क्रिकेट! मैं सोचता हूं कि नियमबद्ध होकर कार्य करना तथा एक दूसरे पर निर्भर रहना कितना उपयोगी है, इस बात का पाठ यह खेल हमें सिखाता है। इस खेल के द्वारा अकेले व्यक्ति की अनेक व्यक्तियों के साथ (ग्यारह खिलाड़ियों के साथ) एकरूपता स्थापित होजाती है—वह अकेला इस ध्येय से नहीं खेलता कि उसकी अपनी विजय होगी, प्रत्युत वह इस ध्येय से खेलता है कि उसके दल की विजय हो"। टॉम ब्रॉउन ने उत्तर दिया, "आपका कथन यथार्थ है, और यही कारण है कि अब दूसरे अनेक खेलों की अपेक्षा क्रिकेट और फुटबाल—जैसे खेलों को अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है"। इस पर मास्टर ने

कहा, "और फिर, ग्यारह श्रेष्ठ व्यक्तियों का नेता होना ! हमारे स्कूल की दुनियाँ में यह भी कैसा उत्तरदायी पद है !—निश्चय ही हेडमास्टर की बराबरी का, जिस में बुद्धि की, सौम्यता की, दृढ़ता की एवं अन्यान्य दुर्लभ गुणों की नितान्त आवश्यकता रहती है"

Tom Brown's School-days पुस्तक में दिया हुआ क्रिकेट खेल के आध्यात्मिक गुणों का यह वर्णन, मेरे विचार में, अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं। क्रिकेट सब खेलों का सम्राट् है और इसको अभ्यास हम सब के लिए परम उपयोगी है। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि काठियावाड़ में दिन प्रति दिन इसका प्रचार फैल रहा है। इसके अतिरिक्त बाहर मैदान में खेले जाने वाले अन्य प्रकार के भी कितने ही खेल हैं जिनका अभ्यास करना श्रेयस्कर होगा। जिसने स्कूल में आत्म-नियन्त्रण का, अपने दल को बलिष्ठ रखने का तथा, अपने कार्य को सहासपूर्वक सम्पादित करने का पाठ सीख लिया है वह अपने भविष्य के जीवन में मनुष्यों के नेतृत्व के पद के लिए पूर्ण रूप से अनुकूल और समर्थ हो सकेगा। जो बात हमारी बुद्धि को, निष्कपटता को, दृढ़ता को, निःस्वार्थता को, शान्त एवं आत्म नियन्त्रण के साथ साथ स्वास्थ्य एवं स्फूर्ति को, विकसित करती है उसको अपनाने में हमारा परम निश्चयात्मक आग्रह होना चाहिए। यदि तुम स्कूल के समय कठोर परिश्रम करते हो और पाठ याद करने के समय अपने काम में पूरा मन लगाते हो। तो यदि खेल के लिए भी तुम अपना

कुछ समय श्रेष्ठता के साथ व्यतीत करोगे तो न्याय-दृष्टि से कोई तुम्हें दोषी नहीं ठहरा सकेगा। वास्तव में, यह कह सकना कठिन है कि तुम अपने अवकाश के समय का इससे अधिक और किस अच्छे काम में उपयोग कर सकते हो। क्योंकि, इस प्रकार व्यतीत किए गए समय में तुम वह पाठ पढ़ोगे जिसको किसी भी 'स्कूलरूम (Schoolroom अर्थात् पढ़ाई का कमरा) की शिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। तुम शान्ति, साहस, आत्मनिर्भरता तथा दूसरे उत्कृष्ट गुणों का वह पाठ पढ़ोगे जो भविष्य में तुमको तुम्हारे कर्त्तव्य-सम्पादन के लिए सर्वथा अनुकूल बना सकेगा और भविष्य के गर्भ में छिपे हुए जीवन की कटुता एवं कठिनाइयों का सामना करने की तुमको शक्ति प्रदान करेगा।

Translation of the Hindi Opinion of :—

Sahityacharya Pandit Bhatt Shree Mathura Nathji Shastri Kaviratna, Editor the "Sanskrit Ratnakar" and Professor, Maharaja's Sanskrit College Jaipur :—

"......................From the portions of 'Gambhir Vishyon Par Saral Vichar' which I have gone through I conclude that the book will be quite useful. Its original author is an experienced scholar. As the language of the translation is very suitable, it shows that the translator also is a scholar. Its thoughts are sublime and of particular utility to students. It contains the thoughts we wish to imbibe in the student community....................."

लाला सेवाराम चावला द्वारा
चन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, नया बाजार, देहली में
मुद्रित।